कोंपल

त्रैमासिक
मूल्य : 20 रुपए
अप्रैल-जून 2015

अप्रैल-मई-जून की कुछ महत्वपूर्ण तिथियाँ

8 अप्रैल (1857)

1857 के स्वाधीनता संग्राम के प्रथम विद्रोही मंगल पाण्डे को ब्रिटिश हुकूमत द्वारा फाँसी

8 अप्रैल (1929)

'बहरों को सुनाने के लिए धमाके की ज़रूरत होती है', इस उद्घोष के साथ भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली की सेण्ट्रल असेम्बली में बम फेंका

9 अप्रैल (1893)

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का जन्मदिवस

13 अप्रैल (1919)

जालिम रौलट एक्ट के विरोध में अमृतसर के जालियाँवाला बाग में शान्तिपूर्ण सभा कर रहे लोगों पर ब्रिटिश फ़ौज के जनरल डायर ने अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलवायीं, जिससे सैकड़ों स्त्री-पुरुष व बच्चे मारे गये। इस दिन को जगह-जगह दमन विरोधी दिवस के रूप में मनाया जाता है।

14 अप्रैल (1963)

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की पुण्यतिथि

18 अप्रैल

चटगाँव विद्रोह। बंगाल (अब बंगलादेश) के चटगाँव शहर में मास्टर सूर्यसेन के नेतृत्व में तरुण क्रान्तिकारियों के दल ने ब्रिटिश शासन के ख़िलाफ़ विद्रोह कर दिया और शस्त्रागार पर क़ब्ज़ा कर लिया।

22 अप्रैल (1870)

रूसी क्रान्ति के महान नेता व्लादिमीर इलिच लेनिन का जन्मदिवस

1 मई

अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस : 8 घण्टे काम के दिन की माँग को लेकर 1886 में शिकागो में शहीद हुए मज़दूरों की याद में इस दिन दुनिया भर के श्रमिक अपने हक़ के लिए लड़ने का संकल्प लेते हैं।

5 मई (1818)

कम्युनिस्ट विचारधारा के संस्थापक महान चिन्तक और क्रान्तिकारी कार्ल मार्क्स का जन्मदिवस

5 मई (1911)

चटगाँव विद्रोह की नायिका – प्रीतिलता वाडेदार का जन्मदिवस

8 मई (1861)

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्मदिवस

10 मई

अंग्रेज़ हुक्मरानों के ख़िलाफ़, 1857 में प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की शुरुआत।

17 मई (1872)

महान गणितज्ञ और चिन्तक बट्रेण्ड रसेल का जन्मदिवस

19 मई (1890)

वियतनाम के महान क्रान्तिकारी नेता हो चि मिन्ह का जन्मदिवस

28 मई (1930)

भगतसिंह के वरिष्ठ साथी, हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के नेता भगवतीचरण वोहरा बम का परीक्षण करते समय शहीद हो गये

25 मई (1899)

महान बंगला कवि काजी नजरुल इस्लाम का जन्मदिवस

11 जून (1857)

महान देशभक्त क्रान्तिकारी, काकोरी केस के शहीद रामप्रसाद बिस्मिल का जन्मदिवस

कोंपल

त्रैमासिक, वर्ष 2, अंक 2
अप्रैल-जून, 2015

संस्थापक
(स्व.) कमला पाण्डेय

सम्पादक
गीतिका

सज्जा
रामबाबू

सम्पादकीय कार्यालय
डी-68, निरालानगर
लखनऊ-226020
फोन : 0522-2786782

इस अंक का मूल्य : 20 रुपये
वार्षिक सदस्यता : 100 रुपये
(डाक व्यय सहित)
आजीवन सदस्यता : 2000 रुपये

स्वत्वाधिकारी अनुराग ट्रस्ट के लिए गीतिका द्वारा डी-68, निराला नगर, लखनऊ से प्रकाशित तथा लक्ष्मी ऑफसेट प्रेस, इन्दिरानगर, लखनऊ से मुद्रित।

सम्पादन एवं प्रकाशन पूर्णत: स्वैच्छिक तथा अवैतनिक

इस अंक में

हमारी बात / तुम्हारी बात 4

कहानियाँ

भोंबोल सरदार–अद्भुत कीर्ति 5

घमण्डी पत्थर 23

जन्म-दिन 26

छांगुर शर्मा की क्लास 34

वह रात जब पलंग गिर पड़ा 38

इतिहास के पन्नों से

1857 की कहानी :
अंग्रेजों के ख़िलाफ आजादी की पहली लड़ाई 30

विज्ञान

जब मेकैनिक ने बनाया माचिस का टेलीफोन 13

कॉस्मास 18

कविताएं

टेलीफोन 15

जंगी जग्गू 16

गाने का धक्का 17

फिल्म-कोना

आसमान के बच्चे 43

चित्र कथा 48

चित्र कैसे बनाएं 49

कार्टून कैसे बनाएं 50

हमारी बात

प्यारे बच्चो,

गरमी की छुट्टियां शुरू हो चुकी हैं। स्कूल बन्द है, पढ़ाई में लगातार जुटे रहने से, रोज-रोज के होमवर्क और बस्ते के बोझ से, चलो कुछ ही दिनों के लिए सही, छुटकारा तो मिला। भारी-भरकम बस्ता तो अब अलमारी के भीतर कहीं मुंह छुपाये पड़ा होगा। अब ये कुछ दिन बस फुर्सत और आराम के हैं। खेलना-कूदना, सैर-सपाटा और ढेर सारी मस्ती। तुम्हारी छुट्टियों को कुछ और मजेदार बनाने के लिए हम तुम्हारे लिए कोंपल के इस अंक में बढ़िया कहानियों का पिटारा लेकर आये हैं। जब कड़ी धूप हो और बाहर खेलने की मनाही हो तो कहानियां पढ़ने के साथ ही तुम कोंपल की मदद से घर में ही दोस्तों के साथ टेलीफोन बनाने का प्रयोग कर सकते हो और अपने बनाये टेलीफोन पर सचमुच बात भी कर सकते हो। है न मजे की बात। फिल्म-कोना में हम इस बार एक दिल छू लेनेवाली ईरानी फिल्म 'आसमान के बच्चे' से तुम्हारा परिचय करवा रहे हैं। तुम्हें अवश्य पसन्द आयेगी। इस अंक में 'घमण्डी पत्थर' को भी तुमसे कुछ कहना है।

यह सब करने के बाद भी तुम्हारे पास काफी समय होगा। जीवन में तुम क्या करना चाहते हो इसके बारे में तुम लिखकर हमें भेज सकते हो। हम उसे कोंपल में छापेंगे। पर शर्त यह है कि वह तुम्हारा खुद का लिखा हो, मम्मी-पापा से लिखवाया हुआ नहीं। नेपाल में आये भयंकर भूकंप ने हजारों लोगों को जान ले ली, सैकड़ों बच्चे मारे गये और सैकड़ों ने अपने मां-बाप खो दिये। अपने खुशी के दिनों में उनके दुख तुम्हारे दिलों को भी तकलीफ पहुंचा रहे होंगे शायद इसीलिए कि बच्चों को अभी मतलबी होने की आदत नहीं पड़ी है

– तुम्हारी दीदी

तुम्हारी बात

भागो भूत के बारे में पढ़ कर मजा आया। मुझे फिल्में बहुत पसन्द हैं लेकिन समझ नहीं आता कि कौन सी फिल्म बढ़िया और मजेदार होगी। जो देखना चाहता हूं मम्मी देखने के लिए मना करती हैं, कहती यह तुम्हारे लिए नहीं है। कुछ फिल्में वह देखने तो देती हैं लेकिन उससे बोरियत होती है। अब मुझे अच्छी फिल्मों के बारे में पता लगता रहेगा।।

आशीष नौटियाल, दिल्ली

भोंबोल सरदार

(छठी किश्त)

अद्‌भुत कीर्ति

स्टेशन दूर पीछे छूट गया, सामने वह रहा गाँव।

गाँव में घुसते ही भोंबोल ने देखा, बायीं तरफ कुम्हार का घर था। दुर्गापूजा के अब अधिक दिन नहीं रह गये थे। कुम्हार दुर्गा ठाकुर गढ़ रहा था (बंगाल में देवी-देवताओं, सामान्यत: सभी को ठाकुर कहने का प्रचलन है)। काम लगभग अंतिम दौर में पहुँच चुका था।

भोंबोल को जोरों की भूख लगी थी। धोती के खूँट्टे को खोलकर उसने नासपाती निकाली और खाने लगा। खाता जा रहा था और इधर-उधर देख भी रहा था। उसने देखा कि कुम्हार के घर के पिछवाड़े बाड़े से सटा एक गागर नींबू का पेड़ फलों से लदा हुआ था और फल ऐसे दीख रहे थे जैसे सोने के गोले हों। उसने चारों तरफ निगाहें दौड़ाई, कहीं कोई नहीं था। कुम्हार की पत्नी घर के अंदर थी। कुम्हार बाड़े के उस तरफ। उसने धोती उठाकर कसकर लपेट लिया और गिलहरी जैसी फुर्ती से पेड़ पर चढ़ गया। पूरा पेड़ हिलने लगा, डालों से चरमराहट की आवाज आयी। भोंबोल ने झटपट एक नींबू तोड़ लिया ठीक उसी समय घर के अंदर से कुम्हारिन की आवाज आयी- "कौन है रे पेड़ पर?"

भोंबोल चुप रहा। नींबू को बगल में दबाकर वह सर सर करता पेड़ से उतरने लगा।

कुम्हार की पत्नी खाना बना रही थी। हाथ में कलछुल लिये वह निकल आयी, भोंबोल को पेड़ से उतरते देख वह चीख पड़ी – ''चोर, चोर नींबू चुराकर भाग रहा है।''

उसकी चीख सुनकर हाथ में लाठी लिये कुम्हार दौड़ा आया, और ठीक पेड़ के नीचे खड़ा हो गया। भोंबोल तो पेड़ पर ही था। बस अब हाथ भर उतरना बाकी रहा गया था। वह बाड़े पर पैर जमा पाता कि इससे पहले ही कुम्हार की पत्नी भी दौड़ते हुये नीचे पहुँच गयी। एक ने हाथ की लाठी को हिलाया, दूसरे ने कलछुल लहरायी, फिर दोनों मिलकर चिल्लाये- ''नीचे उतर, उतरता है कि नहीं-''

भोंबोल ने देखा उतरने के बाद तो उसे कोई बचा नहीं पायेगा और यदि वह खुद न भी उतरना चाहे तो भी वे भीड़ इकट्ठा कर उसे पेड़ से घसीटकर नीचे उतार ही लेंगे। भागने के सारे मौके तब खतम हो जायेंगे। वह बोला- ''उतर ही तो रहे हैं। भूख लगी थी। मैं ने तो बस एक ही नींबू तोड़ा है।''

कुम्हार ने कहा- ''भूखा है, घर में जाकर भात खा। मेरे पेड़ पर क्यों चढ़ा ? किसका लड़का है तू ?''

भोंबोल ने जबाब दिखा-''चाकी मोशाय का -''

-''कहाँ का चाकी ? तुझे तो कभी इस गाँव में देखा नहीं-''

कुम्हारिन बोली- ''झूठ बोल रहा है जी। छोकरा चोर है।''

भोंबोल गुस्से और अपमान से भर उठा।

एक बार मन में आया कि नींबू फेंक दे, कूदकर बाड़े के बाहर जा निकले और फिर चलता बने।

कुम्हार ने हुँकार लगायी – ''क्यों रे उतरेगा कि नहीं? चढ़ें पेड़ पर ?''

भोंबोल ने ललकारा – ''आओ, आकर देखो तो जरा! ''

''तेरी यह हिम्मत –'' कहते हुए कुम्हार पेड़ पर चढ़ने लगा। पेड़ के दक्षिण कोने पर कुम्हारिन का रसोई घर था। पेड़ के नीचेवाले कुछ डाल उसके छज्जे को लगभग छू रहे थे।

कुम्हार को चढ़ता देख भोंबोल फिर से ऊपर चढ़ने लगा। दोनों ही पेड़ चढ़ने में बराबर के माहिर थे। पर भोंबोल कुछ फायदे में था, वह छोटा था, कुम्हार से हल्के शरीर वाला। चढ़ने के रफ्तार में वह जरा सा ही सही पर तेज पड़ रहा था।

नीचे खड़ी कुम्हारिन ने कलछुल हिलाते हुए सुझाव दिया – ''पकड़ो पकड़ो, उसे पैर से पकड़ लो –''

शोर शराबे में मुहल्ले के कुछ लड़के भी दौड़ते हुए पहुँच गये। उन्होंने देखा कुम्हार पेड़ पर चढ़ा हुआ है, और उससे कुछ ऊपर एक अनजान लड़का है। पेड़ भयानक रूप से डोल रहा था। लड़के भी शोर मचाने लगे।

भोंबोल ने देखा अब खैर नहीं। अब शायद वह भाग नहीं पायेगा। कुम्हार उसे लगभग छूने ही लगा था। एक अंतिम कोशिश तो करना ही था। भोंबोल ने अचानक देखा कि सामने रसोईघर की छत है। पलक झपकते ही वह आगे बढ़ा, छत पर गिरा, फिर एक ही छलांग में नीचे पहुँच गया, नीचे पहुँचा और दौड़ लगा दी। बगल में दबा नींबू जरा सा भी खिसका नहीं था।

''पकड़ो पकड़ो चिल्लाते हुए कुम्हार भी छत पर कूद पड़ा और फिर नीचे छलांग भी

लगा दी, सम्हल कर दो कदम दौड़ा ही था कि निकले कोने से फँसकर मुँह के बल धड़ाम से गिर पड़ा।

लड़के ताली बजाते हुए हँस पड़े। वे खूब खुश थे। कुम्हार उन्हें भी कभी नींबू नहीं खाने देता था।

सामने बँसवारी थी, फिर एक पोखर, उसे पार करते ही, सामने वह रहा रास्ता। भोंबोल बँसवारी होकर सड़क की ओर भागने लगा।

दौड़ते हुए उसने गर्दन घुमाई – कोई पीछा नहीं कर रहा था। केवल कुम्हार की पत्नी की फटी हुई आवाज ही सुनी जा सकती थी – '' डकैत, पाजी, बदमाश –''

बुढ़िया का घर

भोंबोल सरपट दौड़ा चला जा रहा था, उसका दम फूलने लगा था।

रास्ते के दोनों ओर पुआल के घर थे। छप्परों पर कद्दू और भतुआ की लताएं चढ़ायी गयी थीं। कुछ में पीले-सफेद फूल भी लग आये थे। कुछ में फूल के साथ तुरन्त निकले नन्हें फल भी दिख रहे थे। गोलाकार फूल हवा में डोल रहे थे। किसी घर के बाहर के आँगन में धान का गट्ठर था, तो किसी के बाहरवाले हिस्से में गोहाल। रास्ते पर ही एक जगह आम के पेड़ के नीचे कुछ लड़के इकट्ठा थे। वे एक कुत्ते की पूँछ में लम्बी सी रस्सी बांध रहे थे जिसके दूसरे सिरे पर टीन का एक खाली कनस्तर बंधा हुआ था। कुत्ता बुद्धु की तरह खड़ा था। भोंबोल को मजा आ गया। वह ठहर गया और खड़े-खड़े तमाशा देखने लगा।

लड़कों ने टीन बाँधकर कुत्ते को दौड़ा दिया। कुत्ता दौड़ने लगा। वह दौड़ता रहा और उसके पीछे लगा टीन का कनस्तर भी साथ साथ बजता रहा टन-टना-टन, टन-टन। लड़के तालियाँ बजाते हुए कुत्ते के पीछे दौड़ने लगे। वह आगे बढ़ गया। जाते जाते कौतुहलवश उसने एक बार पीछे मुड़कर देखा। कुत्ता खेतों में दौड़ रहा था, उसकी पूँछ उठी थी। रस्सी तो बंधी हुई थी पर कनस्तर गायब था।

कुछ दूर और चलने के बाद रास्ते के किनारे एक घनी बेंत की झाड़ी थी। भोंबोल झाड़ी के पास बैठ गया। रास्ते के दूसरे किनारे पुआल के दो छोटे-छोटे घर थे। बाँस की लकड़ी के सहारे भतुआ का एक लतर छप्पर तक पहुँच गया था। घर के चारों ओर अरहर के सूखे डंठलों का घेरा था और सामने एक छोटा सा दलान था, एकदम साफ सुथरा।

कुछ और आगे चलकर एक बहुत पुराना तालाब था। काई, कलनी-हेलंच आदि लतरों के जाले से रुका हुआ पानी। किनारे पर थे नारियल के कुछ पेड़। सामने ही था तालाब का टूटा घाट।

धीरे-धीरे बहती हुई हवा थकी देह को आराम पहुँचा रही थी। भूख और थकान से निढाल भोंबोल के आँखें नींद से भारी थीं। बेख़्याली में उसके हाथ नींबू को इधर उधर लुढ़का रहे थे। अचानक उसने देखा कि उन दो घरों में से एक के एक कोने से बड़बड़ाती हुई एक बुढ़िया निकल आयी। बुढ़िया के बाल बिल्कुल पटुआ की तरह सफेद थे और मुँह में एक भी दाँत नहीं था।

बुढ़िया चीखती हुई किसी को पुकारने लगी थी - ''अरी ओ अभागी, यह तो पीती जा। दिन भर कभी इसके कभी उसके आँगन में भटकेगी, मार खायेगी, गाँव वाले ताना कसेंगे कि मैं तुझे भूखा रखती हूँ, कहाँ बिला गयी, आ तो सही। अरी सुरो, सुरो-ओ-ओ-, देखो तो मुँहजली चुप्पी साधे है। अभी अभी तो पूरे मुहल्ले को सर पर उठा रखा था-''

भोंबोल को लगा बुढ़िया शायद अपनी नातिन को डाँट रही है। वह आहिस्ता-आहिस्ता रास्ते पर चढ़ आयी थी। भोंबोल ने देखा, बुढ़िया हाथ में एक मँजा-धुला पीतल का परात सम्हाले हुई थी। उसने फिर पुकारा-''ओ सुरी-सुरभि।'' अब उसे जबाब मिला- ''हाम्बा आ-आ-'' और साथ ही उधर की झाड़ी से अचानक एक सफेद रंगवाली गाय निकल आयी, उसके पीछे-पीछे उसकी बादामी रंग की बछिया थी।

तो इसी का नाम सुरभी है- भोंबोल मन ही मन हँस पड़ा।

बुढ़िया ने पुचकारा - ''आ मईया, यह फेन तो पीकर जा''

सुरभी ने एक बार बुढ़िया की ओर नजरें फेरी, सिर हिलाया और फिर पूँछ उठाकर उल्टी दिशा में झिगुनी के खेत की तरफ दौड़ लगा दी।

बुढ़िया परात का फेन रास्ते के किनारे किनारे उड़ेलती हुई भी बड़बड़ा रही थी।

अभी तक भोंबोल पर बुढ़िया का ध्यान नहीं गया था। अब उसने आँखें भींचकर उसे देखा और नजरें गड़ाये कुछ देर तक ताकती रही।

फिर बोली - ''वहाँ कौन बैठा है, कौन है तू?''

- ''नाम क्या है-?''

- ''भोंबोल -''

बुढ़िया ने कान पर हथेली रखी फिर गर्दन एक ओर झुका कर पूछा - ''क्या कहा ? टम्बोल?''

बुढ़िया बोली - ''खैर कुछ भी हो। तू वहाँ क्यों बैठा है? जल्दी से हट जा। वहीं से तो कल एक गेहुंअन सांप निकला था। रधोमाल का बेटा छिमन्त (श्रीमन्त) बस मरते मरते ही बचा।''

भोंबोल लपक कर वहाँ से रास्ते पर चढ़ आया और बुढ़िया के सामने खड़ा हो गया। उसने मुड़कर झाड़ी की ओर देखा। वह सहमा हुआ था।

बुढ़िया ने पूछा -'' किसका बेटा है रे तू?''

-''चाकी मोशाय का।''

-''चाकी मोशाय का? इस गाँव में तो कोई चाकी नहीं है? तुम्हारा घर कहाँ है?''

भोंबोल ने - ''वह तुम नहीं जानती हो-''

- ''बता तो सही। देखूं, जानती हूँ कि नहीं।''

भोंबोल बोला- ''वही, दुर्गापुर-''

''दुग्गोपुर ? दुग्गोपुर को भला नहीं जानती मैं ? अरे रेल से जाना पड़ता है।

मेरी बेटी का ससुराल था वहाँ -'' बोलते बोलते बुढ़िया की सूखी आँखें भर आयीं। फिर वह बोली-''अब वहाँ कोई नहीं रहता है। नाती भी चल बसा। खैर वह सब जाने दे। तू कैसे इस गाँव में आ पहुँचा?''

''यहाँ कोई रहता है क्या ?''

- ''नहीं''।

-''तो फिर?''

भोंबोल चुप रहा।

बुढ़िया बोली - ''समझ गयी। मेरा नाती भी ऐसा ही करता था। घर में नहीं रहना चाहता था। तुम लोग बिल्कुल बंदर हो- घर में मन नहीं टिकता है। तुम्हारा बाप है?''

भोंबोल ने सर हिलाया, बोला - ''नहीं।''

-''माँ?''

-''नहीं।''

बुढ़िया बोली-''अरे ओ अभागे! सब को खा गया? तब तुम्हें भला कौन बांध कर रखेगा?'' अचानक वह भोंबोल के करीब आ गयी और बोली - ''कुछ खाया नहीं है न तूने? चेहरा तो देखती हूं एक दम सूख गया है। वह छोरा भी ठीक इसी तरह गांव-जंगल में अकेले अकेले भटकता फिरता था। चल, वह रहा मेरा घर। जो भी हो, दो चार डली गुड़ ही सही, मुँह में डाल तो ले - चल-चल-'' पर भोंबोल अड़ा रहा, वहाँ से हिला तक नहीं। बुढ़िया बोली - मुँह मत चुरा, चल-चल।'' कहते हुए भोंबोल का हाथ पकड़कर खींचते हुये वह उसे घर के अंदर ले आ यी।

बुढ़िया के घर का दालान लीपा हुआ साफ-सुथरा था। एक कोने में बुढ़िया खाना पकाती है। बर्तन-थाली सब मांजकर इस समय तिपाई पर रखा हुआ है। चूल्हे के बगल में एक भूरे रंग की बिल्ली ढोंगी साधु की तरह आँख मूंद कर बैठी हुई थी। पैर की आहट पाकर मानो बहुत तकलीफ के साथ उसने अपनी आँखें खोली और एक महीन सी आवाज निकाली - ''मिया ऊँ ।''

बुढ़िया बिल्ली से बोली -'' अब तुम्हारा क्या काम है? जरा ठहर नहीं सकती है? कहते हुए दलान पार कर वह घर के अंदर चली गयी। फिर सरकंडे की एक चटाई लाकर उसने दलान पर बिछा दिया और भोंबोल को पुकारा - ''आ, आकर बैठ जा।''

भोंबोल उस समय सामने बढ़े हुए छज्जे तले खड़ा था। बुढ़िया की बात मानकर दबे पाँव दलान चढ़कर चटाई पर बैठ गया।

बुढ़िया घर के भीतर गई और हाँडी से दो कटोरे ताजा लइया धामी (बेंत की छोटी सी टोकरी) में निकाल लायी। फिर छत से लटकते हँड़िया से उसने नारियल के दो लड्डू निकाले और लइया पर रखकर धामी को भोंबोल के सामने रखा।

धामी को अपनी ओर खींचते हुए भोंबोल ने कहा-''इस गागर नींबू का क्या करें, आई-माँ?''

बुढ़िया खुशी से फूले न समायी। खुशी की लहर उसके पूरे चेहरे पर फैल गयी। बोली- ''क्या कहकर पुकारा?''

-''आई-माँ?''

बुढ़िया गदगद हो गयी। वह भोंबोल के सामने बैठ गयी। हँसते हुए बोली -''यह नींबू तुझे कहाँ मिला?''

-''कुम्हार के घर के पेड़ पर-''

-''मतई कुम्हार के पेड़ का नींबू है? इसे मत खा मेरे लाल। तुझे मैं बढ़िया नींबू खिलाऊँगी। इसे फेंक दे। वैसा कंजूस मैंने अपने साढे तीन बार बीस पार की पूरी उम्र में कभी भी नहीं देखा-''

पर भोंबोल ने नींबू नहीं फेंका। उसे नीचे पास रखकर लड्डू और भूजा खाने लगा। बुढ़िया ने उसे एक लोटे में पानी लाकर दिया। लोटा चमक रहा था। फिर बोली - तू बैठ कर आराम से खा बेटा, मैं जाकर तालाब से दो चार कलमी साग का लतर तोड़ लाती हूं और देखती हूँ शायद कहीं एक आध लेटा-पोठही (लेटा और पोठही तालाब में पाये जाने वाली दो सामान्य किस्म की मछलियां) भी मिल जाये।

दोपहर में बुढ़िया ने भोंबोल को आउश चावल के मोटा लाल दानेवाला भात, गाढ़े उड़द की दाल और मिर्च छौंक के साथ कलमी साग दी। लेटा या पोठही, स्पष्टत: कुछ भी उसके हाथ नहीं लगा था। एक कटोरा गाढ़ा दूध भी लाकर उसने भोंबोल के सामने रख दिया। उस पर बिलकुल चटाई जैसी मोटी साढ़ी पड़ी थी। भोंबोल को साढ़ी बहुत पंसद थी। परम तष्टप्ति के साथ उसने खाना खाया, दूध सुरभी का था। खाना खाने के बाद वह गहरे नींद में सो गया। जगने पर उसने पाया कि सूरज बँसवारी के पार ढल चुका है।

बुढ़िया बोली- ''तू मेरे ही पास रह जा बेटा। यह घर-दुआर, यह तालाब सब मेरा ही तो है। दो बीघा धान की जमीन भी है, सब तुझे दे जाऊँगी, समझा?''

पर भोंबोल के लिए यह सब चीजें अर्थहीन थीं। उसे तो टाटा नगर जाना है। वहाँ जाकर वह बहुत से काम सीखेगा। भला घर-जमीन या खेत में क्या रखा है? कोरी बकवास।

उसने बुढ़िया के बातों का कोई जबाब नहीं दिया। आँगन में खड़ा-खड़ा यह मालूम करने की कोशिश करने लगा कि कलकत्ता किस दिशा में है। उस तरफ-जिधर सूरज डूब रहा है? उसने दिमाग पर जोर डालकर अपनी सोच को नक्शे के साथ मिलाने का प्रयास किया। हाँ- ठीक ऐसा ही है! अब एक बार कलकत्ता पहुँच जाये तो वहाँ से फिर टाटा नगर पहुँचना बहुत मुश्किल नहीं होना चाहिए। यहीं से वह कलकत्ता के लिए रवाना हो सकता है। पर खुड़ो मोशाय के लोगों से बच पाना उतना आसान नहीं नजर आता। वे तो चारों ओर आदमी भेज ही चुके होंगे। कलकत्ता कितनी दूर है ही! भोंबोल के गाँव से मात्र एक सौ दस मील। यहाँ से मान लो एक सौ तीस मिल ही हो। उसने हिसाब लगाया, यदि रोज दस मील पैदल चला जाय, तो वह तेरह दिन में कलकत्ता पहुँच जायेगा। तो अब डर काहे का ?

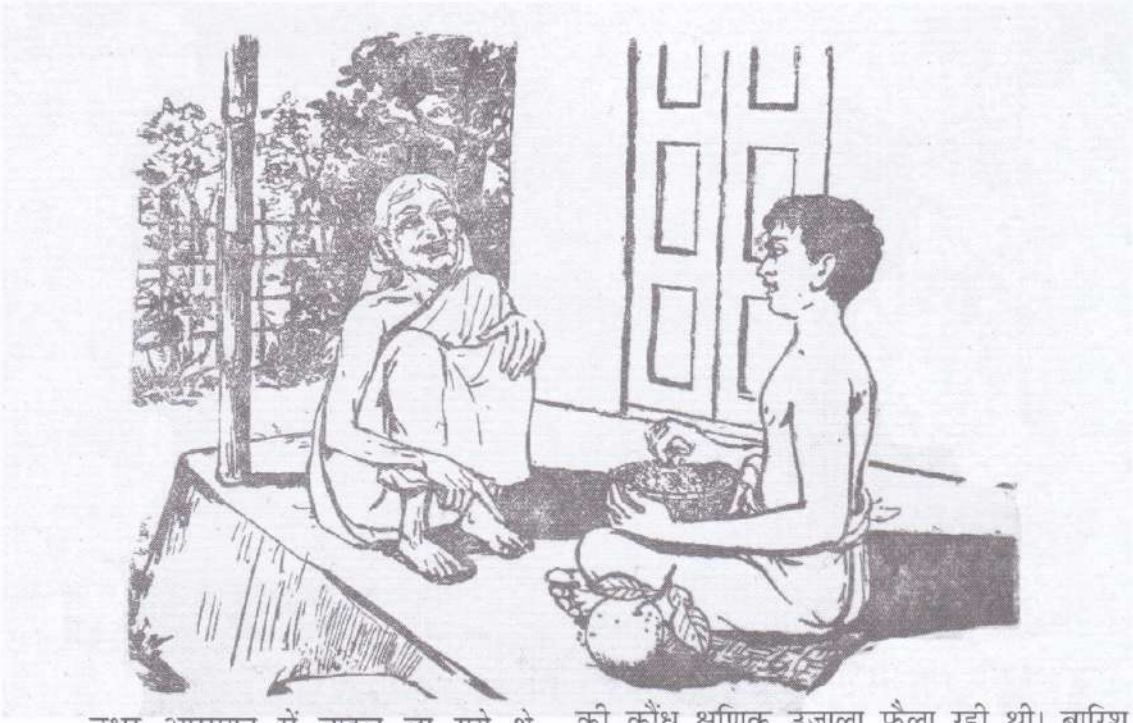

उधर आसमान में बादल छा गये थे, अंधेरा हो आया था! आंधी आने ही वाली थी। बुढ़िया बोली – ''कहीं जाना नही, भयानक देया (तूफान) आ रहा है।''

सुरभी 'हाम्बा आ' के साथ घर लौट आयी थी। बुढ़िया उसे और बछिये को गोहाल में ले जाकर उनके लिये मिट्टी के नाद में उसने सानी पानी डाल दिया। उस दिन उसने गोहाल में मच्छर भगाने के लिए गोयठा (गोबर का ईधन) नहीं जलाया। (इस साँजाल कहते हैं– साँझ के समय मच्छर भगाने के वास्ते गोयठा जलाकर आग और धुँआ पैदा करना)। कैसी हवा है। कौन जाने कहीं धू-धू करके आग न फैल जाय।

भोंबोल कुछ देर तक इधर-उधर डोलते हुए फिर दलान पर चढ़ आया। सांझ हो चली थी। दिन ढलते ही बादल गरजने लगे। बिजली की कौंध क्षणिक उजाला फैला रही थी। बारिश शुरू हो गई और साथ मे आँधी भी चलने लगी।

बुढ़िया ने उस दिन और खाना नहीं बनाया। मलाईवाला गाढ़ा दूध, भूजा, मर्त्तमान केला (बंगाल का विख्यात खूब बड़ा और पुज़्ट प्रजाति का केला) और गुड़ से उसने बढ़िया फलाहार तैयार कर दिया था।

रात में सोने के लिए जब बुढ़िया लेटी तो उसने अपनी कहानियों की पोथी खोल दी – ''एक था राजा, उसकी सात रानियां – कहानी तीन प्रांत व्यापी विशाल मैदान को पार नहीं कर पायी कि बुढ़िया खर्राटें भरने लगी। पर भोंबोल की आँखों में अभी नींद नही थी।

कमरे में अंधेरा है। बाहर बारिश जारी है– झमा झम, झमा झम।

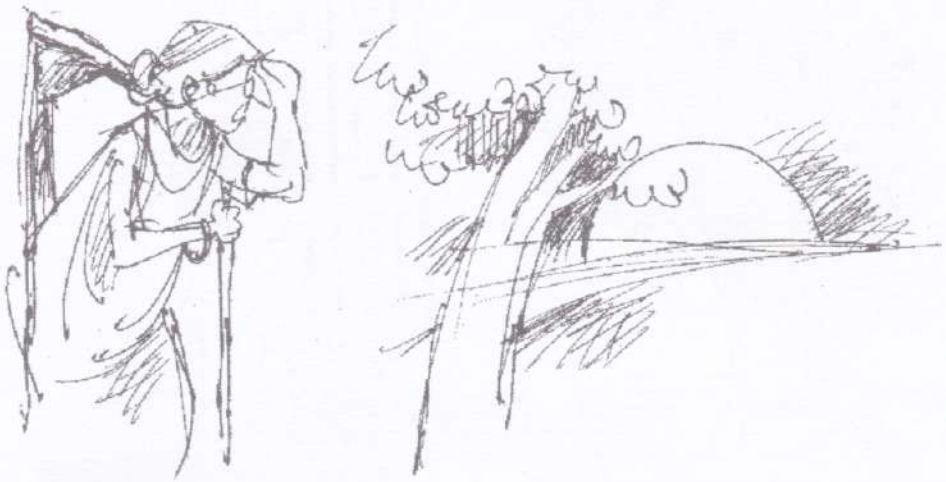

पोखरों और तालाबों में मेढ़क लगातार टर्राते हुए गाना गाये जा रहे हैं- टर्र्-टर्र्, टर्र्-टर्र्-। कलमी के झाड़ से डाहुक-डाहुकी जोड़े (डाहुक- एक प्रकार का जलचर पक्षी जो लगातार आवाज निकालने के लिये प्रसिद्ध है, डाहुकी- मादा डाहुक) की आवाज भी गाने के साथ जुड़ गये। पूरी रात उन लोगों का जलसा चलता रहा। सबने मिलकर मानो एक साझा कार्यक्रम बनाकर भोंबोल के आँखों से नींद चुरा ली। उसका मन अपने गांव पहुँच गया। नदी का किनारा। नदी के उस पार दिगन्त को छूता बालूचर, उसके बाद एक गाँव। भोंबोल का गाँव नदी के इसी किनारे था। पूरब की ओर उसका कमरा है, खिड़की के पास बैठा वह गाना गा रहा है। बाहर एकतारा बज रहा है।

भोर होते होते सब कुछ शांत हो गया। भोंबोल सो गया।

सुबह हुई-बिना किसी शोर शराबे के। बुढ़िया ने देखा, भोंबोल गहरी नींद में सोया हुआ है। वह तालाब की ओर चल दी।

जब लौटकर आयी तो देखती है कि चटाई खाली है, भोंबोल का कोई अता पता नहीं। सोचा, आस-पास कहीं गया होगा, बस अब लौटता ही होगा।

पर धीरे-धीरे धूप निकल आयी, बादल भी छंट चुके थे। भोंबोल फिर भी नहीं लौटा। बुढ़िया बाहर निकलकर सड़क पर खड़ी हो गयी- उसकी थरथराती आवाज सभी दिशाओं में फैल गयी-"टम्बोल, ओ रे टम्बला, आ रे भैया, लौट आ मेरे ला- ल "

पर उसका टम्बोल अब कहाँ-? वह तो उस समय आधा कोस दूर मानिकपुर की पक्की सड़क पकड़ कर पश्चिम की ओर चला जा रहा था। हाथ में बांस की लकड़ी पकड़े और बगल में गागर नींबू दबाये।

(बंगला से अनुवाद : देवाशीष बराट)

विज्ञान

जब मेकैनिक ने बनाया माचिस का टेलीफोन

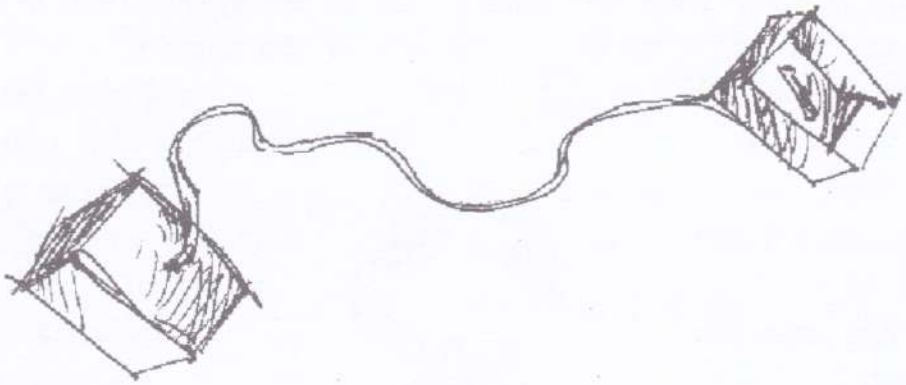

एक दिन एक मेकैनिक घर में टेलीफोन लगाने आया। जब वह काम खत्म करके जाने लगा तो मोहन ने नये टेलीफोन की ओर देखते हुए कहा :

– काश! हमारे पास भी ऐसा फोन होता!

– यह टेलीफोन मैंने किसके लिए लगाया है? आज से यह तुम लोगों का ही तो है।

– हमें ऐसा फोन नहीं चाहिए। हमें तो अपना अलग फोन चाहिए जिसमें मैं कारखाने से गीता को अस्पताल में फोन कर सकूं।

– यह तुम्हारा अस्पताल और कारखाना कहां पर है? मेकेनिक ने पूछा।

– अस्पताल बड़े कमरे में सोफे पर है, – मोहन ने उत्तर दिया – और कारखाना हमारे कमरे में है।

– समझ गया – मेकैनिक कुछ सोचता हुआ बोला – तुम्हारे पास माचिस है?

– है।

– और धागा?

– धागा भी है।

– तो लाओ!

मेकैनिक ने एक डिब्बी में से तीलियां निकालकर उसके तले में सुई से धागा पिरो दिया। धागा निकल न जाये, इसके लिए उसने धागे के इस सिरे पर एक तीली बांध दी। मेकैनिक ने इसी तरह धागे के दूसरे सिरे को माचिस की एक और डिब्बी से जोड़ दिया। इसके बाद उसने दोनों बच्चों को डिब्बियां पकड़ा दी और कहा :

– गीता, तुम यहीं खड़ी रहो और मोहन तुम अपने कारखाने में जाओ।

गीता अपनी डिब्बी पकड़कर खड़ी हो गयी और मोहन दौड़कर अपने कमरे में चला गया। इस समय दोनों डिब्बियों के बीच धागा एक तार की तरह सीधा खींचा गया था। मोहन अपनी डिब्बी को मुंह के पास लाया और गीता कान के पास।

– गीता, तुम्हें मेरी आवाज सुनाई दे रही है?

– मुझे तो तुम्हारी आवाज बिना टेलीफोन के भी अच्छी तरह सुनाई दे रही है।

– तुम दूसरे कान को हाथ से बन्द कर लो – मेकैनिक बोला।

गीता ने हथेली से अपने दूसरे कान को ढक लिया।

– गीता! मोहन फिर से चिल्लाया।

– अब मुझे फोन पर बड़ी साफ आवाज सुनाई दे रही है। गीता बोली और वह अपनी डिब्बी को मुंह के पास लायी।

– मोहन!... अरे!

– क्या हुआ? –मेकैनिक ने पूछा।

– ऊंगली में गुदगुदी हो रही है, गीता ने जवाब दिया।

– कौन गुदगुदी कर रहा है?

– डिब्बी का तला, गीता ने कहा।

– इसका मतलब वह कांप रहा है? मेकैनिक ने पूछा।

– जी हां, गीता मान गयी।

– देखो, डिब्बी का तला खुद भी कांप रहा है और धागे को भी कंपा रहा है। मेकैनिक ने समझाया।

– मैं सब समझ गया – मोहन बड़े जोर से बोला।

– क्या समझ गये? मेकैनिक ने पूछा।

– कम्पन धागे के रास्ते मेरी डिब्बी तक पहुंचता है और उसके तले को कंपा देता है जिससे फिर आवाज पैदा हो जाती है।

– बिल्कुल ठीक कह रहे हो। अच्छा, अब यह बताओ, जब हम माचिस के टेलीफोन के बिना बात कर रहे होते हैं तो मेरी आवाज तुम्हारे कान तक कैसे पहुंचती है? धागा तो है नहीं, फिर कौन सी चीज कांपती है?

बच्चे सोचने लगे। थोड़ी देर बाद गीता बोली :

– अरे, हां। वह तो हवा कांपती है। आप अपनी उंगलियां गले पर रख दीजिए।

– मेकैनिक ने ऐसा किया।

– अब आप बोलिए – "आ-आ"।

– आ-आ-आ, – मेकैनिक बोला।

– देखा, कैसे गला कांप रहा है?

– हां!

– बस, यही बात है। जब हम बोलते हैं, हमारा गला कांपता है, उसमें आसपास की हवा कांपने लगती है। इसके कारण हवा में वैसी ही लहरें उठती हैं, जैसी कि पानी में। अन्तर केवल इतना है कि यह लहरें दिखायी नहीं देतीं, पर सुनायी जरूर देती हैं।

– शाबाश! – मेकैनिक बोला और उसने हंसते हुए बच्चों से विदा ली।

धागे तथा माचिस की डिब्बियों से तुम भी टेलीफोन बना सकते हो।

कविता

टेलीफोन

कोर्नेई चुकोव्स्की

घण्टी यों बजती जाती है
सारा दिन:
टन टन-टिन,
टन टन-टिन,
टन टन-टिन।
कभी सील फोन करता है, कभी हिरन।
तीन रात-दिन जाग रहा हूं,
थका हुआ हूं।
थोड़ा सो लूं,
लेकिन ज्यों ही आंख लगी
घण्टी फिर से तभी बजी।
-कौन वहां?
मैं गैंडा।
क्या झंझट है?
हाय, मुसीबत बहुत विकट है -
दौड यहां जल्दी से आओ!
क्या किस्सा, कुछ तो बतलाओ?

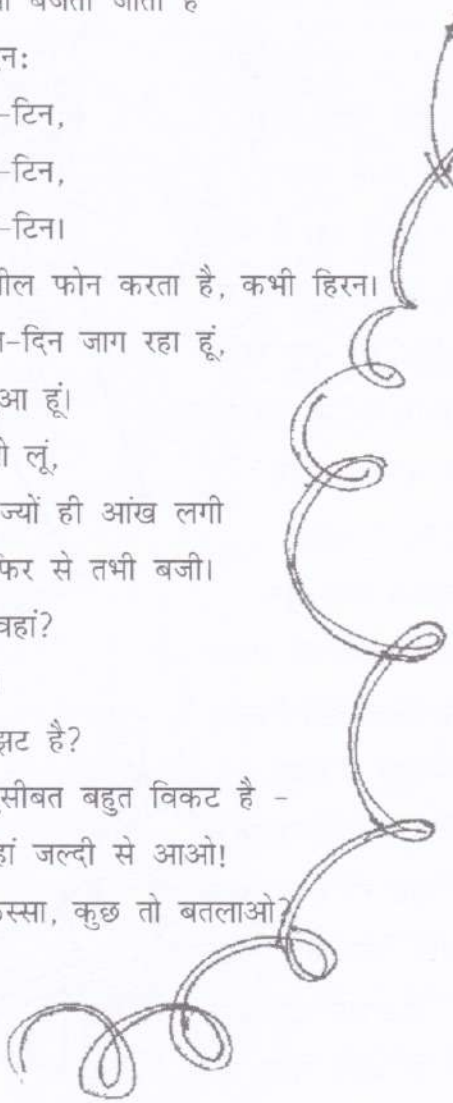

आकर उसकी जान बचाओ!
किसकी जान?
दरियाई घोड़े के हैं संकट में प्राण!
गिरा बेचारा वह दलदल में...
वह दलदल में?
हां दलदल में!
जान बड़ी उसकी मुश्किल में!
ओह, यदि आप नहीं आयेंगे
बचा नहीं उसको पायेंगे -
तो वह दलदल में डूबेगा,
किसी तरह से नहीं बचेगा,
दरियाई घोड़ा बेचारा
हाय, हाय, किस्मत का मारा!
तो मैं अभी भागता आऊं
यदि सम्भव तो उसे बचाऊं!
काम नहीं आसान कि यह तो सिरे चढ़ाना
दलदल से दरियाई घोड़ा बाहर लाना।

कविता

जंगी जग्गू

अपना यह पगला जग्गू हर रोज यहां है दिखता;
मन ही मन गाता रहता है मीठा-मीठा हंसता।
चौंक अचानक रुक-रुक जाता रस्ता चलते-चलते,
झट कूदे दाएं से बाएं लगा छलांग उछल के।
तीखी मुद्रा आस्तीन चढ़ा संभाले धोती कांछ,
हवा में 'अइयो' कहकर बेसुध मुट्ठी रहा है भांज।
चीख कर कहता, ''जाल रचा है? जग्गू उसमें फंसेगा?
अकेला जग्गू, सात हैं जर्मन, फिर भी जग्गू लड़ेगा।''
गर्मजोशी से, तमतमकर के तिड़िंग बिड़िंग वह नाचे,
कभी दौड़कर जाए आगे, भागे कभी तो पाछे।
भांजे छतरी घुमा, हवा में मारे धपास धूम,
आंखें मींच के बाजीगर सा, चकरी जैसा घूम।
कूद-कूद थक चूर-चूर है, पसीना बदन से झड़ता,
धड़धड़ाम धरती पर वह, फिर लंबलेट हो गिरता।
हाथ पैर उछाल चीखता, लहू आंखों में लाता,
कहता, 'देखो जग्गू गोले से कैसे झट मर जाता!'
इतना कहकर एक मनट तक खूब ही तड़प तड़प कर,
मुर्दे जैसा अकड़ हुआ चुप, गिरा फिर बीच सड़क पर।
फिर सीधा उठ बैठा, सिर को जरा-जरा खुजलाया,
एक बहीखाता निकालकर जेब से बाहर लाया।
उसमें लिखा कि-'सुन रे जग्गू, भीषण हुई लड़ाई
अपने दुश्मन पांच मार के, मर गया जग्गू भाई''

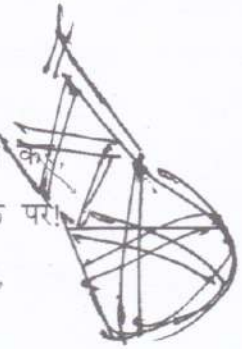

कविता

गाने का धक्का

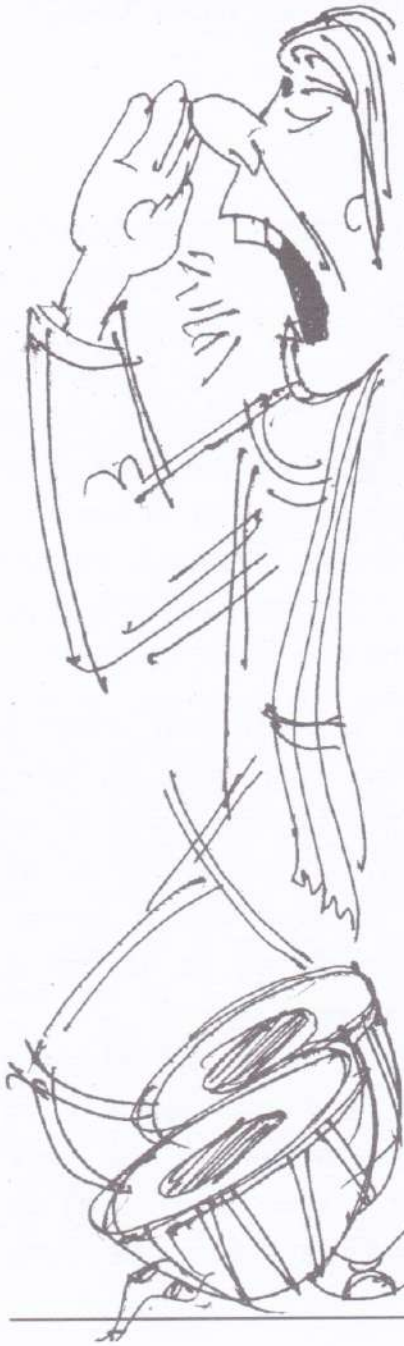

ग्रीष्मकाल में तान छेड़ते भीष्मलोचन शर्मा,
गाना उनका बोले धावा दिल्ली से जा बर्मा!
अपने प्राणों का मोह छोड, जी जान लगा के गाएं,
जन-जन चारों ओर भागते भन-भन सिर चकराए।
जख्मी होकर मरते कितने, करते कितने छटपट,
और चीखते, ''जान गई रे, रोको गान फटाफट।''
बंधन तोड़ें भैंसे घोड़े, सड़क किनारे चित्त गिरें;
तानें तान भीष्मलोचन बस, इधर-उधर न नजर पड़े।
चौपायों के पांव हैं ऊपर, उलट गिरें हो-हो मूर्छित,
टेढ़ी है दुम, होश हुए गुम, बोलें गुस्से में धत् छिः ।
जल के प्राणी, पा हैरानी, डूबे गहरे में चुपचाप,
वृक्ष वंश, बस हुए ध्वंस हैं, बेशुमार सारे झुपझाप।
खाएं चक्कर, मार कुलाटी, हवा में पक्षी सारे,
सभी पुकारें, ''बस कर दादा, रोको गाना प्यारे।''
दहाड़ तान की, फाड़ आस्मां, लाए आंगन में भूकंप,
भीष्मलोचन का गाना भीषण, मारे खुशी के दिल हड़कंप।
टक्कर का उस्ताद मिला, इक बकरा हक्का-बक्का,
गीत में ताल दिया पीछे से, मार सींग से धक्का।
फिर तो बात-बात में, जैसे पड़ा गान पर डंडा,
भीष्मलोचन हो गए ''बाप रे'' कहकर बिल्कुल ठंडा।

सुकुमार राय

विज्ञान

कॉस्मास

प्रसिद्ध खगोलविज्ञानी और लेखक कार्ल सागान की विश्व प्रसिद्ध रचना के अंश

(चौथी किश्त)

इसी अलेक्जेन्द्रिया में, लगभग 300 ईसा पूर्व मानव जाति ने एक बौद्धिक अभियान शुरू किया। छः सौ वर्षों का यह अभियान हमें अंतरिक्ष के उपकुल तक ले आया। पर मात्र एक आभास, एक अनुभूति के सिवा आज उस गौरवशाली संगमरमर जड़ी नगरी का कुछ भी अवशेष नहीं है। दमन, उत्पीड़न और ज्ञान के आंतक ने प्राचीन अलेक्जेन्द्रिया की सारी स्मृतियों को मिटा दिया। अतिवैविध्यपूर्ण जन समुदाय वाली नगरी थी अलेक्जेन्द्रिया । मकदुनियाई और बाद में आने वाले रोमन सैनिक, मिस्री याजक सम्प्रदाय के लोग, यूनानी अभिजात वर्ग, फिनिशियाई नाविक, यहूदी वणिक, भारत और सहारा अफ्रीका से आये लोग, सभी (नहीं, गुलामों की विशाल आबादी के लिये उस विशाल नगरी में कोई स्थान नहीं था) उस नगरी में रहते थे, और अलेक्जेन्द्रिया के उत्कर्ष काल में अधिकांश समय ये नागरिक मिलजुल कर एक दूसरे के प्रति सम्मान की भावना लेकर रहे।

सिकन्दर महान ने इस नगरी की स्थापना की थी, और उसके एक अंगरक्षक ने इसे बनवाया। विदेशी संस्कृतियों को, मुक्त मन से किये गये ज्ञान के खोजों को सिकन्दर की ओर से हमेशा सम्मान मिला। किवदंती है कि सिकन्दर

ने दुनिया के सर्वप्रथम गोताखोर यान को लोहित सागर तल पर उतारा था। वास्तव में ऐसा हुआ था या नहीं यह महत्वहीन है। सिकन्दर अपने सेनानी और सेनानायकों को हमेशा इसके लिए प्रोत्साहित करते कि वे भारतीय और पारसियों के साथ वैवाहिक सूत्र में बंधें। दूसरे देश के लोगों का वे सम्मान करते थे। विचित्र और दुर्लभ प्राणियों के वे संग्राहक थे, इसमें वह हाथी भी शामिल था जिसे वे अपने शिक्षक अरस्तू के लिए लाये थे। उन्होंने अपने नाम की इस नगरी का निर्माण बड़े विस्तार के साथ किया। उस नगरी का, जिसे दुनिया के वाणिज्य (व्यापार), संस्कृति और ज्ञान का केन्द्र होना था। साठ हाथ चौड़े रास्ते, भव्य स्थापत्य, सिकन्दर की विशाल समाधि, फारस नामक उंचा प्रकाशस्तंभ जो प्राचीन विश्व के सात विस्मयों में से एक था, ये सब नगरी की शोभा बढ़ाते थे।

पर अलेक्जेन्द्रिया का सबसे महान आश्चर्य था उसका ग्रन्थागार और उसके साथ लगा संग्रहालय। उस विख्यात ग्रन्थागार का यदि कोई उल्लेखनीय अवशेष है तो वह है सेरापियम (जो मिस्र की टॉलेमीराजवंश की आराया देवी सेरापिस के नाम से निकला है) का एक शीतल, आर्द्र (नम) भूला-बिसरा तहखाना, ग्रन्थागार से लगा एक और भवन, जो कि पहले एक मंदिर था और बाद में ज्ञान की खोज करने के लिये जिसका उपयोग किया गया। आलमारी के कुछ सड़ रहे ताख़, शायद अब उस ग्रन्थागार का एक मात्र भौतिक अवशेष हैं।

पर यही था वह स्थान जो अपने समय में इस ग्रह की सबसे महान नगरी के ज्ञान और गौरव का केन्द्र था, पूरे विश्व इतिहास में सच्चे अर्थों में सबसे पहला अनुसंधान केन्द्र था। ग्रन्थागार के विद्यार्थी सम्पूर्ण कॉसमॉस का अध्ययन करते थे। कॉसमॉस एक यूनानी शब्द है जो विश्व का ऐक्यबद्ध व्यवस्थित रूप का बोध कराता है। इस दृष्टि से यह अन्य यूनानी शब्द केयोस् से विपरीत अर्थवाला शब्द है, केयोस् का मतलब है परिपूर्ण अव्यवस्था। कॉसमॉस का तात्पर्य है सारे चीजों का गहराई से एक दूसरे से गुंथा होना। सम्पूर्ण विश्व जिस अद्भुत ढंग से सूक्ष्म और नाजुक रूप से संयोजा हुआ है, यह शब्द (कॉसमॉस) उसके प्रति एक स्तब्ध कर देनेवाला अत्यन्त आश्चर्यजनक श्रद्धा का भाव जगाता है। भौतिक

शास्त्र, साहित्य, औषधि, ज्योतिर्विज्ञान, भूगोल, दर्शन, गणित, जीवविज्ञान, प्रौद्योगिकी की दुनिया में खोये हुए विद्यार्थियों का एक विशाल समुदाय यहाँ उपस्थित था। यह वह समय था जब विज्ञान और ज्ञान की खोज अपनी शैशवावस्था को पार कर समझदारी की उम्र प्राप्त कर ली थी। यहाँ प्रतिभा फूट पड़ती थी । अलेक्जेन्द्रिया का ग्रन्थागार वह जगह थी जहाँ हम मनुष्यों ने सर्वप्रथम संसार के सारे ज्ञान को एक गंभीर सुनियोजित रूप से एकत्र और संकलित किया था।

एराटोस्थेनीज़ के अतिरिक्त, यहाँ ज्योतिष विज्ञानी हिपर्कस मौजूद थे, जिन्होंने आसमान में नक्षत्रमंडलों की पहचान की, तारों की चमक का आकलन किया; युक्लिड थे, जिन्होंने अपनी प्रखर मेधा के बल पर रेखागणित को सूत्रबद्ध किया। जब उनके सम्राट एक कठिन गणितीय समस्या में उलझे हुए थे, तो उन्होंने दो टूक शब्दों में यह कह दिया था ''रेखागणित के लिये कोई अलग राजकीय मार्ग नहीं होता''; थ्रेस के डायोनिसियस थे, जिनका पद और भाषा के अध्ययन में वैसा ही योगदान था जैसा कि रेखागणित में युक्लिड का; शरीरवैज्ञानिक हेरोफाइलस थे, जिसने यह स्पष्ट रूप से स्थापित कर दिया कि यह मस्तिष्क ही है हृदय नहीं, जो कि ज्ञान और बुद्धि का केन्द्र है। अलेक्ज़न्द्रिया के हेरॉन, जिन्होंने गीयरयुक्त यान, वाष्पचालित इंजन का आविष्कार किया और यंत्रमानव (रोबोट) पर पहली पुस्तक ऑटोमाटा लिखी; पर्गा के अपोलोनियस थे, जिन्होंने शंकु और द्विशंकुओं के विभिन्न काट, वृत्त, दीर्घवृत्त, परावलय, हाइपरबोला के बारे में बताया-दिखाया, ये वे वक्रपथ है, जैसा कि अब हम जानते है , जिनमें ग्रह, पुच्छलतारे, तारे परिक्रमा करते हैं; लियोनार्दो द विंची के

पहले तक यांत्रिकी की दुनिया की सबसे बड़ी प्रतिभा आर्किमिडीज थे और फिर टॉलेमी थे, एक ज्योतिषशास्त्री और भूगोलविज्ञानी, जिन्हें तमाम ऐसी चीजों के संकलक होने का श्रेय जाता है जो मिलकर उस छद्म विज्ञान का निर्माण करते हैं, जिसे आज हम ज्योतिषविज्ञान के नाम से जानते हैं। टॉलेमी की पृथ्वीकेन्द्रिक विश्व की अवधारणा, जो कि समूचे संसार पर बाद के पन्द्रह सौ वर्षो तक छायी रही, एक तरह की याद दिहानी है कि बौद्धिक क्षमता का होना दिग्भ्रमित होने से बचने की कोई गारंटी नहीं है। यहां थी इन सारे महामानवों की कतार और उससे जुड़ी उनकी शहादत। और था अपनी स्थापना के सात शताब्दी बाद ग्रन्थागार का विनाश, खैर इस कहानी पर हम आगे लौटेंगे।

सिकन्दर के उत्तरवर्ती मिस्र में यूनानी शासक जानने और सीखने के बारे में गंभीर थे। वे, और

यह सिलसिला शताब्दियों तक चलता रहा, हमेशा अनुसंधान को प्रोत्साहन देते रहे और ग्रन्थागार के माहौल को उस समय की श्रेष्ठ प्रतिभाओं के लिए हमेशा क्रियाशील और अनुकूल बनाये रखा। ग्रन्थागार में दस विशाल अनुसंधान कक्ष थे, अलग-अलग विषय के लिए अलग-अलग कक्ष। फव्वारे और तरुवीथियां थीं, वनस्पति उद्यान थे, एक प्राणी उद्यान था, शवविच्छेद कक्ष थे, एक वेधशाला थी। एक विशाल भोजकक्ष था, जहाँ विभिन्न विषयों पर आलोचनात्मक विमर्श होते थे।

ग्रन्थागार की सबसे महत्वपूर्ण चीज थी उसकी किताबों का संग्रह। ग्रंथागार के संचालक दुनियाभर की तमाम संस्कृतियों और भाषाओं को मथ डालते थे। विदेशों से प्रतिनिधि भेजकर पूरे के पूरे पुस्तकालय ही खरीद लिये जाते थे। अलेक्जेन्द्रिया के बंदरगाहों में लंगर लगाये व्यापारिक जहाजों की तलाशी ली जाती थी - प्रतिबन्धित सामानों के लिये नहीं - किताबों के लिये। पोथियों को मंगाकर, उनकी प्रतिलिपियाँ बनायी जाती थीं और फिर उन्हें अपने स्वत्वाधिकारियों के पास लौटा दिया जाता था। संख्याओं का सटीक आकलन मुश्किल है, पर ऐसा होना संभव लगता है कि ग्रंथागार में 5 लाख पुस्तकें थी, पाँच लाख हस्तलिखित पोथियां। क्या हुआ होगा इन किताबों का? जिन प्राचीन सभ्यताओं ने इनका सृजन किया था, वे खुद ही विलुप्त हो गयीं, और ग्रंथागार को जानबूझकर नष्ट कर दिया गया। एक छोटा सा अंश ही बच पाया, और बच पाये दयनीय हाल में बिखरे कुछ पन्नों के टुकड़े। पर कितने अद्‌भुत हैं इन पन्नों के टुकड़े! मिसाल के तौर पर, हम यह जान जाते हैं कि ग्रन्थागार के ताखों में सामोस के ज्योतिषविज्ञानी अरिस्टार्कस द्वारा लिखी एक पुस्तक थी, जहां अरिस्टार्कस का एक तर्क यह था कि यह पृथ्वी एक ग्रह है और बाकी ग्रहों की तरह वह भी सूर्य की परिक्रमा करती है और दूसरा तर्क यह कि तारे पृथ्वी से बहुत अधिक दूरी पर स्थित हैं। दोनों ही तर्क आज सच्चाई को ही व्यक्त करते हैं, पर इसके पुनः आविष्कार के लिये हमें लगभग दो हजार वर्ष इंतज़ार करना पड़ा। अरिस्टार्कस की इस कृति के नष्ट होने से हुई क्षति को यदि हम कई लाख गुना बढ़ाकर अनुभव कर पायें तब हमें प्राचीन सभ्यताओं की उस उपलब्धि की विराटता और उसके त्रासद विनाश का बोध होने लगेगा।

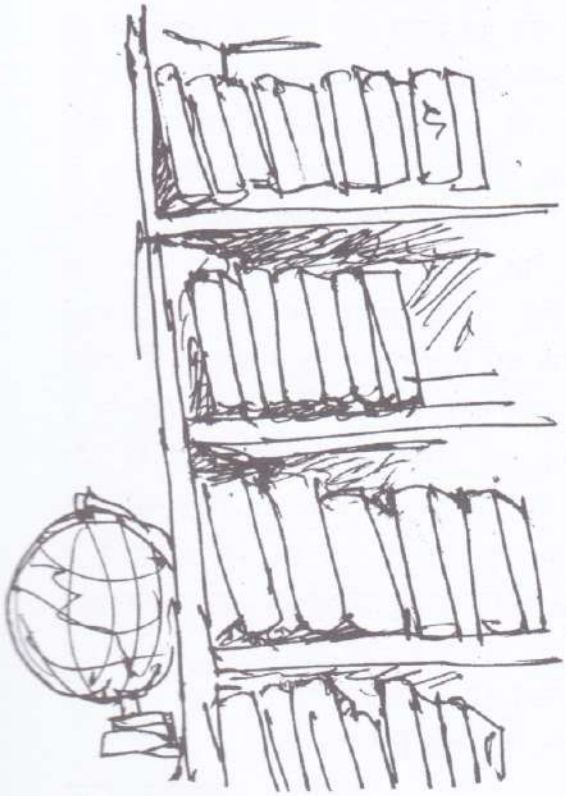

विज्ञान में वर्त्तमान उपलब्धियों के मामले में आज हम प्राचीन विश्व को बहुत पीछे छोड़

आये हैं पर हमलोगों के इतिहास के ज्ञान में कुछ अमिट (न मिटाये जाने लायक) बाधाएं खड़ी हो गई हैं। ज़रा इस बात की कल्पना करो कि यदि तुम्हारे पास अलेक्ज़न्द्रिया ग्रन्थागार से पुस्तकें ईशू कराने का कार्ड होता तो उसके जरिये अतीत के कितने ही रहस्यों की गुत्थियां तो सुलझायी जा सकती थीं! हम यह जानते हैं कि ग्रन्थागार में बेबीलॉन के याजक बेरोसस् की लिखी हुई तीन खण्डों वाली विश्व इतिहास की एक पुस्तक थी जो खो चुकी है। पुस्तक के पहले खण्ड में सृष्टि से लेकर प्रलय लानेवाली बाढ़ तक के कालखण्ड का वर्णन है। बेरोसस् इस कालखंड की लम्बाइ को 432,000 वर्ष मानते हैं जो ओल्ड टेस्टामेण्ट के कालपंजिका में लिखे उसी कालखंड की लम्बाई से सौ गुना बड़ा है। मैं कल्पना करना चाहता हूँ कि उस कालखण्ड के दौरान घटे किन-किन घटनाओं का वर्णन बेरोसस् की उस किताब में थे?

प्राचीन लोग जानते थे कि यह विश्व अति प्राचीन है। वे सुदूर अतीत में झाँकना चाहते थे। हम अब जानते हैं कि यह विश्व उनके तमाम कल्पनाओं से कहीं अधिक प्राचीन है। हमने आकाश में विश्व को परखा है और यह जान चुके हैं कि हमारा निवास एक खोयी सी मंदाकिनी की एक छोटे से अंचल में स्थित एक नगण्य तारे की परिक्रमा करता हुआ धूल के एक कतरे पर है। यदि हम आकाश की असीम विस्तार में एक धूलकण हैं तो यह भी सच है कि हमारा यह अस्तित्व भी काल के विस्तार में मात्र एक पल का है। अब हम यह जानते हैं कि हमारा विश्व या कहना चाहिए कि विश्व अपने आधुनिकतम स्वरूप में 1500 से 2000 करोड़ साल से अस्तित्व में है। एक उल्लेखनीय महाविस्फोट (बिग बैंग) की घटना से इस कालखंड का समय शुरू होता है। विश्व के इस शुरुआती समय में, मन्दाकिनियां नहीं थीं, न ही कोई तारे या ग्रह थे, कोई जीवन नहीं, कोई सभ्यता नहीं, बस एक सभी ओर समान रूप से देदीप्यमान अग्निगोलक संपूर्ण आकाश में फैला हुआ था। महाविस्फोट के उस चरम विश्रृंखला (केयोस्) से कॉसमास तक की यह महायात्रा जिसके बारे में हम जानना शुरू कर रहे हैं, पदार्थ और ऊर्जा का एक प्रलयकारी अन्तरपरिवर्त्तन है जिसके हम भाग्यशाली प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं। और जब तक उन्नततर जीवों से हम मिल नहीं पाते – तब तक हमलोग खुद इन सारे परिवर्तनों में सबसे आश्चर्यजनक परिवर्तन हैं, उस महाविस्फोट के सुदूर वंशज हैं, इस विश्व को, जिससे हम विकसित हुए हैं, उसे समझने के लिये और उसे बदलने के लिये निर्देशित हैं।

प्रस्तुति : देवाशीष बराट

घमण्डी पत्थर

जरा इस घमण्डी पत्थर की बात तो सुनो! यह कहता है कि अगर वह न होता तो हम सभी बन्दर बनकर घूमते रह जाते। यह तो छोटे मुंह बड़ी बात हो गई। चलो इसकी बात सुन ही लेते हैं। दूध का दूध और पानी का पानी हो जायेगा। उसने अपनी बात शुरू की –

बंदर, गुरिल्ला और चिंपैजी रिश्ते में तुम्हारे बहुत पुराने पूर्वज हैं परन्तु इनमें से तुम सीधे विकसित नहीं हुए हो। असल में तुम्हारे यानी आदमियों और बंदरों के पूर्वज एक ही होमिनोइड परिवार से आते हैं। इस होमिनोइड परिवार के पूर्वज पेड़ों पर समूह में रहते थे। वे पेड़ों के फल और बीज खाते थे इसलिए उन्हें नीचे आने की कोई जरूरत नहीं थी। एक बात यह भी थी कि जंगली जानवरों के खतरनाक इरादों का उन्हें पता था जो हमेशा उन्हें चट करने के फिराक में ताक लगाये रहते। इसलिए वे पेड़ पर डेरा जमाकर मजे से रहते। जंगल में उनकी यात्रा भी एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक हवाई सफर के जरिये होती। वे एक के बाद एक शाखाओं पर हवा में छलांग लगाते हुए पहुंचते, इस काम में उनकी लंबी मजबूत पूंछ सन्तुलन देती और हाथ-पैर की मजबूत पकड़ डाल को कसकर पकड़ने में उनकी मदद करती।

जैसे जैसे समय बीतता गया जलवायु और भौगोलिक स्थितियों में भी बदलाव आने लगे। बहुत से बड़े पेड़ खत्म हो गये। जंगल उतना घना नहीं रह गया था। पेड-पौधे और बनस्पतिवाले इलाके भी नष्ट होते गये। जंगल के घटते जाने के साथ जंगल में रहनेवाले जानवरों में से कई समाप्त हो गये। मनुष्य के पूर्वजों की जिंदगी भी बहुत कठिन हो गई उन्हें भी भोजन के लाले पड़ने लगे। कहीं से खाने के लिए कुछ मिलता तो उसे पाने के लिए वे आपस में लड़ते और एक दूसरे को मार डालते। भोजन की तलाश में तुम्हारा यह बनवासी पूर्वज पेड़ों की डाल छोड़कर

जमीन पर उतरने के लिए मजबूर हो गया। अब यह तो कोई भी बता सकता है कि पेड़ों के जीवन से नीचे जमीन पर रहना कितना अलग था। एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाने के लिए कूदने की जरूरत पड़ती लेकिन पृथ्वी पर चलने का तरीका अलग था, अब कूदने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई थी। इससे साफ था कि डालों पर कूदने और उन्हें पकड़ने के लिए हाथों की जैसी बनावट जरूरी थी जमीन पर अब उसकी जरूरत नहीं रह गई थी। इसलिए उनके हाथ का वह काम, जिससे वे डालियों को पकड़ते और कूदते थे अब कम हो गया क्योंकि जमीन पर इसकी आवश्यकता नहीं रही। अब उनके हाथ उन कामों से काफी कुछ आजाद हो गये जिन्हें उन्हें पहले करना पड़ता था। इसलिए अब उनके हाथ और दूसरे कामों को कर सकते थे।

बात तो ठीक लग रही थी लेकिन इस कहानी में उस घमण्डी पत्थर की जगह कहां है? अभी दिमाग में यह उमड़ घुमड़ ही रहा था कि वह अभिमान के साथ हंसा जैसे उसने मन की बात ताड़ ली हो .....

उसने कहना जारी रखा। जमीन पर उतरते ही तुम्हारे इस पूर्वज आदिम मानव के हाथ की भूमिका बदल गई। वह फल बेरियां और खाने लायक अन्य चीजों को बटोरता और अपना पेट भरता। जब ये चीजें भी उतनी आसानी से मिलनी बन्द होने लगीं तो वह पेड़ों की जड़ खोदकर कन्द मूल खाता। खोदने के लिए वह हाथों और फिर टहनियों का इस्तेमाल करने लगा। अपने शत्रुओं से मुकाबला करने के लिए भी उसे लकड़ी का उपयोग उन्हें मारने के लिए करना पड़ता। अब और बढ़िया ढंग से भोजन जुटाने

और अपने दुश्मन जंगली जानवरों से दो-दो हाथ करने के लिए उसे हमारी जरूरत पड़ी, जिसे तुम सिर्फ एक अदना सा पत्थर ही समझते हो। हमें उठाने, पकड़ने, और इस्तेमाल करने की प्रक्रिया में तुम्हारे पूर्वजों के हाथ विभिन्न प्रकार के कामों को करने के आदी होते गये। जैसे ही उन्होंने अपने हाथों का ऐसे अलग अलग काम करने में इस्तेमाल किया उनके खड़े होने और चलने की स्थिति में भी महत्वपूण बदलाव आये। वे सीधे दो पैरों पर खड़े होने और चलने लगे। यह इसलिए हुआ कि जिन हाथों का इस्तेमाल वे अपने शरीर का वजन साधने और चलने में करते थे वे आजाद हो चुके थे। वे अब भी झुण्ड में रहते लेकिन उनमें महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। दोनों पैरों पर सीधे खड़े होने के कारण वह अब दूर तक देख सकते थे। सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण परिवर्तन था पूंछ का गायब होना। इसने तुम्हारी पूरी जाति को शर्म से बचा लिया। हम यह सुनकर सचमुच शर्मा गये।

पहले तुम्हारे आदिम पूर्वज हमें प्राकृतिक

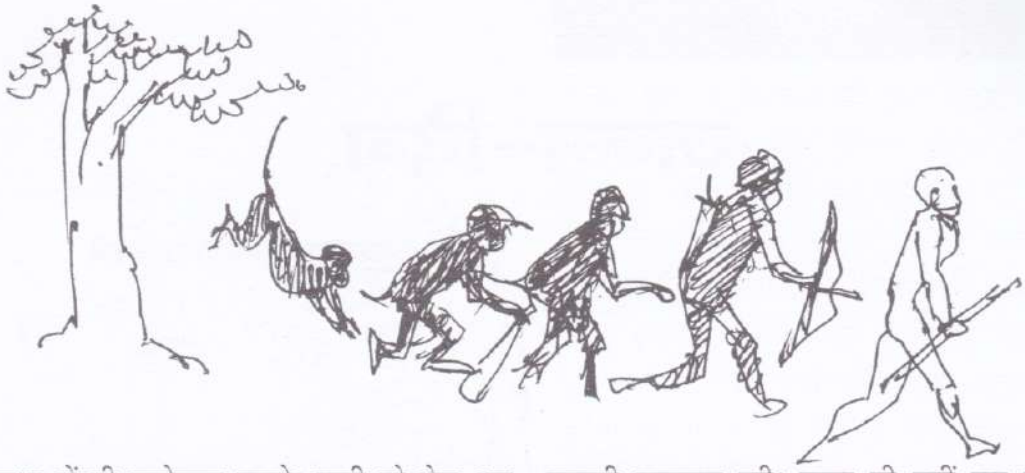

अवस्था में ही इस्तेमाल करते। पानी के तेज धार से नुकीले और तेज हुए हम पत्थरों को वे खोज लाते और औजार की तरह इस्तेमाल करते। फिर घिसकर उन्होंने हमें धारदार बनाया। और हमारे योगदान से उनकी क्षमताओं का विकास हुआ। ये हम ही थे जिसकी वजह से तुम्हारे पूर्वज दूसरे सभी प्राणियों की तरह केवल 'जिन्दा औजार' नहीं रह गये थे। हमारे ही कारण हाथों से काम करने की उनकी योग्यता काफी बढ़ गई। हमने उन्हें औजार बनानेवाला प्राणी बना दिया था। उनके हाथों को ताकत दी थी। चलो इस बात को दूसरी तरह कहें। कोई भी औजार तुम्हारे हाथ-पैर का विस्तार है। जैसे तुम किसी ऊंचे पेड़ से आम नहीं तोड़ पाते तो लंबी छड़ी की सहायता से यह काम आसानी से हो जाता है। यानी छड़ी की मदद से तुम अपनी हाथ की लम्बाई बढ़ा लेते हो। इसी तरह, लकड़ी को काटना है तो कुल्हाड़ी का उपयोग हाथों की ताकत को बढ़ा देता है। हमने उस आदिम मानव के हाथों में औजार बनकर उसे भोजन इकट्ठा करने और अपने दुश्मनों से लड़ने में ही नहीं बल्कि आगे चलकर मांस के लिए जानवरों का शिकार करने में भी उसकी सहायता की। इतना ही नहीं हम मामूली पत्थरों ने तुम्हारे पूर्वजों के दिमाग के विकास में और उनकी बुद्धि को बढ़ाने में भी भूमिका निभाई। एक पत्थर को आकार देकर और पैना बनाकर अगर एक औजार में बदलना हो तो इसमें बुद्धि और कुशलता की जरूरत होगी। जैसे कि, औजार बनाने के लिए किस प्रकार का पत्थर चुना जाये? उसका कौन सा किनारा धारदार बनाया जाये? उसे ज्यादा से ज्यादा काम लायक बनाने के लिए कौन सा आकार दिया जाये? उसे बनाने की तैयारी कैसे की जाये? इस तरह तुम्हारे पूर्वज ने सीखना शुरू किया। उसका ज्ञान और कौशल बढ़ा। चीजों और परिस्थितियों को पहले से देखने समझने का तरीका आया। किसी भी चीज के बारे में पहले से सोचना और फिर उस पर योजना बनाकर काम करना आया। हम पत्थरों ने ही तुम मनुष्यों के ऐसे शारीरिक और मानसिक विकास की राह तैयार की।

वह सच कह रहा था। पेड़ों पर रहनेवाले हमारे पूर्वजों को आज का मनुष्य बनाने में उसकी भी भूमिका रही है। वह चाहें जितना भी घमण्डी हो उसकी यह बात हमें माननी पड़ी।

मनीषा

कहानी

जन्म-दिन

कल्याण गंगोपाध्याय

'बीस रुपये में मेरा जन्म-दिन नहीं मनेगा?' टुआ की इस बात पर सभी हंस पड़े। 'सच कह रही हूं, मेरे पास बीस रुपये जमा हैं।' टुआ ने अपने पिता की तरफ देखकर कहा, 'पिताजी, इस बार तुम कुछ भी खर्च मत करना। मेरे बीस रुपयों से खर्चा होगा।'

मां, दादी और पिताजी एक दूसरे की तरफ देखकर हंस पड़े। उन सबकी हंसी से टुआ चुप हो गयी। ठीक उसी समय दरवाजे की घंटी बज उठने से टुआ दौड़कर बाहर आयी, छोटी मौसी और मौसा को देखकर खूब खुश हो गई। वहीं से चिल्लाकर जोर से बोली, 'दादी, मां! देखो कौन आया है?'

तब तक छोटी मौसी व मौसा घर के भीतर आ गये थे। उनके बैठते ही टुआ मौसा के निकट आकर खड़ी हो गई। पिताजी ने कहा, 'टुआ, क्या बोल रही है, सुनेंगे?' पिताजी यह कहकर फिर से हंसने लगे। टुआ ने नाराज होकर कहा, 'इसमें हंसने की क्या बात है। मौसा, मैंने ठीक किया है न? मेरे पास जो बीस रुपये जमा हैं, इस बार उसी से मैं अपना जन्म दिन मनाऊंगी। उसी में मैं सभी को खिलाऊंगी। तुम ही बताओ क्या नहीं होगा इतने में?'

मौसा बोले, 'बिलकुल होगा। तुम खाने में क्या-क्या दोगी?'

'फ्राइड राइस, गोश्त, दही और मिठाई?'

'वाह खूब! इसके बाद भी तुम्हारे रुपये बचेंगे। उन बचे हुए रुपयों से क्या करोगी?'

टुआ ने कुछ सोचा। उसके बाद बोली, 'मौसा, तुम तो आइसक्रीम पसन्द करते हो, आइसक्रीम खिलाऊंगी।'

'ठीक है, तब तो बड़ा मजा आयेगा।'

टुआ ताली बजाते हुए नाचने लगी, 'मजा आयेगा, कितना मजा आयेगा। है न मौसा?'

इसलिए छोटे मौसा खूब अच्छे लगते हैं, टुआ को। उनसे बात करके मन में खुशी होती है। कितनी अच्छी कहानी सुनाते हैं। उनकी कहानी को क्लास में सुनाकर वह सबको अवाक् कर देती है। सभी साथी कहते हैं, 'अरे टुआ, तेरे साथ तो पांचवीं क्लास में हम भी पढ़ते हैं, लेकिन इतनी अच्छी कहानी तो हम जानते ही नहीं।' टुआ उनकी बातों पर हंस देती और मन ही मन यह सोचने लगती है कि मेरी तरह तुम सभी के मौसा थोड़े ही हैं।

छोटे मौसा बोले, 'तुम इस बार जन्म-दिन पर क्या लोगी?'

टुआ बोली, 'तुम मुझे सिर्फ किताब देना। मजेदार कहानी वाली किताब। और कुछ नहीं चाहिए।'

मौसा हंसकर बोले, 'ठीक है, किताब ही दूंगा।'

'तो अगले रविवार को मेरा जन्म-दिन है, तुम और मौसी जरूर आना।' यह बोलकर टुआ ने मां, दादी व पिताजी की तरफ देखा, वे अब भी हंस रहे थे। वह लज्जित होकर मौसी व मौसा के बीच जाकर बैठ गयी।

टुआ अन्त में उठकर अपने जमा किये बीस रुपये ले आयी और पिताजी के हाथ में दे दिया। इसके अलावा और क्या कर सकती है टुआ? वह क्या बड़ों की तरह बाजार-हाट जाकर सामान वगैरह खरीदने वाला झमेला उठा सकती है भला? बाद में तय हुआ कि फ्राइड राइस की जगह भात बनेगा। अब चाहे जो हो, टुआ इसमें नहीं पड़ने वाली। खीर भी बनेगी। जन्म-दिन पर खीर बननी चाहिए, इसका तो टुआ को ख्याल ही नहीं आया था। अच्छा हुआ, मौसा भी तो खीर खूब पसन्द करते हैं।

. . . .

बड़े मौसा और मौसी भी आये हैं। साथ में वे आफिस वाली गाड़ी भी लाये हैं। सबने मिलकर तय किया है कि शाम को सभी घूमने जायेंगे। लेकिन टुआ का कहीं जाने का मन नहीं है। बड़े मौसा जिस दिन गाड़ी लाते हैं, उस दिन बड़े लोगों के मन में भी कैसी लालच पैदा होती है। मौसा भी गाड़ी दिखाने के लिए ही तो सबको बैठाकर घुमाने ले जाते हैं। इतने लोगों की गहमागहमी में टुआ की सांस फूलने लगती है। इससे तो अच्छा है, छोटे मौसा के साथ बैठकर कहानी सुनना।

छोटे वाले कमरे में पंतु, पारो, जूना, शिवा सभी हो-हल्ला कर रहे हैं। टुआ भी जय को साथ लेकर साथियों के बीच चली आयी। हरेक तरह की किस्सा कहानी हुई, खेल चला। उसके बाद जितने सारे लोग आये थे, सभी 'हैप्पी बर्थ

डे' बोलकर टुआ के हाथ में तोहफा देने लगे। इस तरह इतने आनन्द और मौज के साथ समय गुजर रहा था। टुआ का कान दरवाजे की तरफ ही लगा हुआ है। कोई आवाज आई, सुनते ही दौड़ पड़ी। देखा, मंझले चाचा व चाची आये हैं साथ में लारा है। लारा का हाथ पकड़कर टुआ अपने साथियों के बीच चली आयी।

छोटी मौसी कुछ देर बाद आयीं।

टुआ उनकी तरफ अवाक् होकर देखती रही। कुछ देर बाद ही बोल सकी, 'मौसी, मौसा कहां हैं? अभी भी नहीं आये?'

'आयेंगे। एक जरूरी काम में फंस गये हैं। आते ही होंगे।'

टुआ का रोने का मन हुआ। उसका लटका मुंह देखकर मौसी ने उसे अपने निकट खींच लिया और माथे पर हाथ फेरते हुए बोलीं, 'आयेंगे बेटी, आयेंगे। लेकिन जब आकर देखेंगे कि अपनी टुआ के इतने सुन्दर मुंह पर आषाढ़ के बादल छाये हैं, तो क्या उन्हें अच्छा लगेगा?'

टुआ यह सुनकर हंस पड़ी।

वाणी को देखकर दौड़ी आयी और उसका हाथ पकड़ लिया। बोली, 'वाणी दीदी, कोई मुझे सजा नहीं रहा है। तुम काम में इतनी व्यस्त हो कि मैं कुछ बोल भी नहीं सकती। चलो, अब मुझे सजा दो।'

उसके बाद उसने अपने साथियों की तरफ देखकर कहा, 'तुम सब थोड़ी देर बैठो। मैं बस अभी आ रही हूं।'

वाणी दीदी बड़ी मौसी के घर काम करती हैं। बंगला देश के युद्ध के समय जब सभी भाग रहे थे, तभी घर के सारे लोगों को खोकर वाणी अकेली पड़ गयी थी। बड़ी मौसी उसे वहां से उठा लायी थीं, आश्रय दिया था। तभी से वह

यहीं है। बड़े मौसा और मौसी दोनों नौकरी करते हैं। पूरे घर की तथा जय की जिम्मेदारी उस पर है।

टुआ से वाणी बोली, 'कैसे सजोगी टुआ, बोलो तो?'

टुआ बोली, 'मैं कुछ नहीं कहूंगी। तुम जैसा चाहो, वैसा कर दो।'

वाणी हंसी। सजने-संवरने के बीच खुशी एक गिलास दूध और बिस्कुट लेकर आयी। बोली, 'टुआ, इसे अच्छी बच्ची की तरह पीकर दिखाओ तो!'

खुशी टुआ के घर में काम करती है। कैनिंग इलाके की तरफ रहती है। साल में दो बार वहां जाती है। टुआ की मां भी तो स्कूल में काम करती हैं। दादी के साथ-साथ वो भी सारा दिन घर और टुआ की जरूरतों को पूरा करती रहती है। उसकी देख-भाल करती रहती है।

दूध पीकर गिलास खुशी के हाथ में थमाते हुए टुआ बोली, 'खुशी दीदी, वाणी दीदी, आज तुम सब भी सजोगी न।'

वाणी बोली, ' पगली कहीं की, हम कैसे सजेंगे भला। कितना काम पड़ा है। हम सबको सजने का समय कहां है?'

'तब मैं अपना सारा श्रृंगार बिगाड़ दूंगी। तुम

लोगों के साथ बात नहीं करूंगी।'

वाणी, खुशी दोनों चुप रह गयीं।

टुआ बोली, 'तुम दोनों के पास सुन्दर कपड़े हैं न। उन्हें सन्दूक में तह करके क्यों रखे हुई हो। आज मेरे जन्म-दिन पर तुम सबों को सजने की इच्छा क्यों नहीं होती।'

वाणी और खुशी की आंखें छलछला आयीं।

थोड़ी दर बाद ही वे दोनों भी सज-संवर कर आ गयी।

टुआ उन्हें देखकर बोली, 'तुम दोनों को देखकर कितना अच्छा लग रहा है। एकदम फूल की तरह सुन्दर।'

वाणी बोली, 'टुआ देखो तो कौन आया है?'

टुआ ने देखा, छोटे मौसा हाथ में पुस्तक लेकर आये हैं। वह दौड़ गई उनकी तरफ।

. . . . .

टुआ के सारे साथी खा भी चुके थे। बड़े लोग खाने पर बैठे थे। भात खत्म हो गया था। रसोइये को फिर से भात बनाने के लिए कह दिया गया। भात लगभग तैयार होने को था। टुआ ने देखा, वाणी और खुशी दोनों एक कोने में खड़ी हैं। उन दोनों को खाने के लिए किसी ने नहीं कहा है।

टुआ मां से बोली, 'मां, वाणी दीदी और खुशी दीदी तो खाने पर बैठी नहीं, कब खायेंगी?'

मां ने कहा, 'उनका भात तो अब भी शायद बना नहीं है।'

टुआ के घर में काम करनेवालों के लिए कम दाम का चावल खरीदा जाता है। बरामदे में पंखा रहते हुए उनको गरमी में ही सोना पड़ता है। बड़ी मौसी के घर में भी ऐसा ही होता है। टुआ के मन में बड़ा दुख है। उनके घर में किसी आयोजन, उत्सव में जिस तरह से अन्न की बरबादी होती है, बड़े लोग बेहिसाब खर्च-वर्च करते हैं, इन सबमें जरा समझदारी से काम लिया जाता, तो इन काम करनेवाले लोगों को कभी कम दाम का चावल खाने को नहीं दिया जाता। आज टुआ का जन्म-दिन है। आज के दिन अगर उनके लिए भी भात एक साथ बनता, तो कौन-सा खर्च बढ़ जाता। सभी लोग बड़ी-बड़ी चिन्ता करते हैं, देश के बारे में, गरीब के बारे में। जबकि यहां बड़े लोग इस तरह की बचपना करते हैं। टुआ को लगा कि उसके जमा किये हुए बीस रुपयों में इतना सारा कुछ हो गया, इन दोनों को भी आज यही दाल-भात नहीं खिलाया जा सकता था?

मां ने कहा, 'क्यों रे खुशी, खड़ी क्यों है? अपना भात चूल्हे पर चढ़ा दे। खायेगी कब?'

टुआ ने देखा, वाणी दीदी स्टोव जलाकर भात बनाने के लिए अपने हिस्से के चावल चढ़ा रहीं है। यह चावल खुशी अलग से थाली में धोकर ले आयी थी।

घर के सब बड़े लोग खा रहे हैं। सबकी थाली में सफेद फूल की तरह भात के दाने पड़े हैं। यह दो, वह दो, सभी मजे में मांग-मांग कर खा रहे हैं।

स्टोव पर चढ़ाया हुआ चावल पक रहा है। वाणी और खुशी दोनों उस तरफ ताक रही हैं। जो चेहरे, आज टुआ को थोड़ी देर पहले फूल की तरह लगे थे। वे दोनों चेहरे दुख व कातरता से मानो मुरझा गये थे।

इतिहास के पन्नों से

1857 की कहानी : अंग्रेजों के ख़िलाफ आजादी की पहली लड़ाई

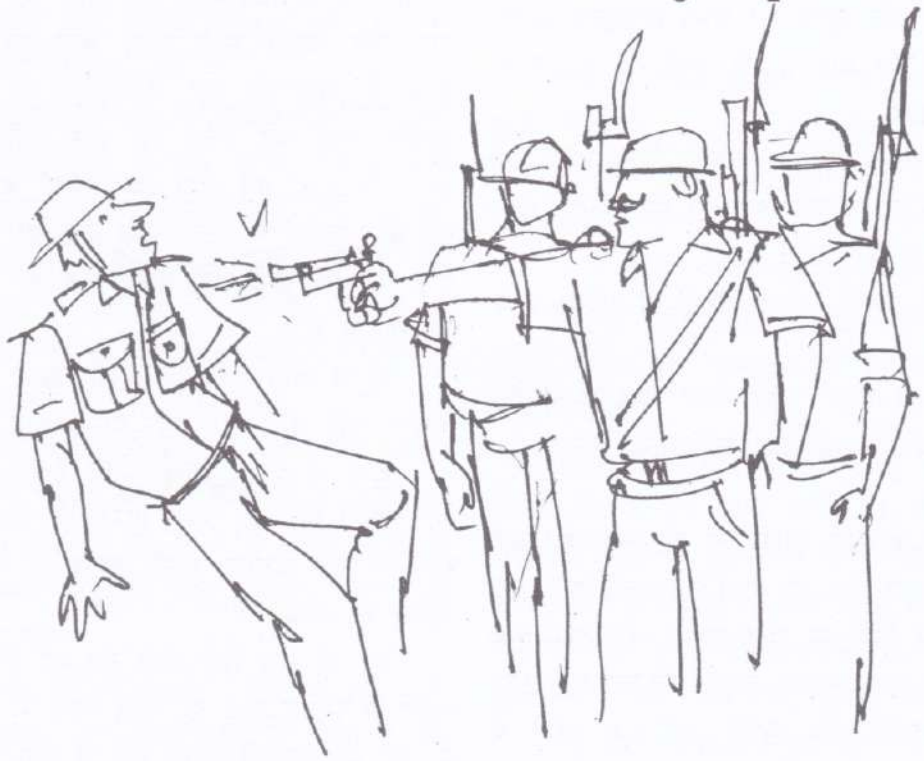

29 मार्च 1857, कलकत्ता(कोलकाता) का बैरकपुर परेड मैदान। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार के सिपाहियों की चौतीसवीं बटालियन सुबह की परेड के लिए तैयार खड़ी है। अचानक सिपाहियों के बीच से 29 साल का एक नौजवान सिपाही निकलकर सामने आता है और अपने कमाण्डर का आदेश मानने से इन्कार कर देता है। पूरे बटालियन में खलबली मच जाती है। सर्जेंट मेजर जेम्स ह्यूसन जाँच के लिए आते हैं, लेकिन यह क्या? उस नौजवान सिपाही ने मेजर

पर गोली चला दी है...टन्न्न्न्न्न्न्...अलार्म बज उठा है, मेजर के सहायक हेनरी बॉग आते हैं, और सिपाही ने फिर निशाना लिया है...अर्रररर. ..वार खाली गया, गोली घोड़े को जा लगी है... अरे, यह तो खुलेआम बग़ावत है! कम्पनी सरकार के ख़िलाफ़ एक सिपाही की बग़ावत!! जनरल जॉन हर्से आ गये हैं और उन्होंने क्वॉटर गार्ड तथा अन्य सिपाहियों को आदेश दिया है कि फौरन उस बागी सिपाही को गिरफ्तार कर लिया जाय, लेकिन कोई भी सिपाही अपनी जगह से नहीं हिला है...जनरल चीख रहे हैं...कोई हिलता नहीं...सिवाय एक सिपाही के जिसने आगे आकर उस नौजवान बागी सिपाही को दबोचने की कोशिश की है... दूसरे सिपाही मन ही मन उस बागी नौजवान के साथ तो हैं लेकिन बगावत में वे खुलेआम उसका साथ देने आगे नहीं आते... वह उनकी ओर देखता है परन्तु कोई सामने नहीं आता ... उसकी कोशिश असफल हो गई ... उसका नतीजा वह जानता था ... परन्तु उसे अँग्रेजों के हाथों ज़िल्लतभरी मौत नहीं चाहिए... वह शान से एक बहादुर की मौत मरना चाहता है ... लेकिन वह क्या करे उसे तो ज़मीन पर गिराकर दबोच लिया गया है...कोई बात नहीं उसने रास्ता निकाल लिया है...अपनी बन्दूक की नली छाती के पास लाकर पैर के अँगूठे से उसने ट्रिगर दबा दिया ...निशाना चूक गया...वह बच गया, सिर्फ गहरा घाव है। उस नौजवान सिपाही का 6 अप्रैल को कोर्ट मार्शल कर दिया गया , मतलब बग़ावत की सजा दी गयी और 8 अप्रैल को फाँसी दे दी गयी! लेकिन कहानी यहीं खत्म नहीं हो गयी? तुम जरूर जानना चाहोगे इस कहानी में आगे क्या हुआ? वह नौजवान सिपाही कौन था? उसने कम्पनी सरकार के ख़िलाफ़ बग़ावत क्यों की?

यह कहानी है हमारे देश के पहले स्वतंत्रता संग्राम की जो 1857 में लड़ा गया था और जिसे सिपाही विद्रोह के नाम से भी जाना जाता है। अभी हम जिस बहादुर नौजवान सिपाही के बारे में बातें कर रहे हैं उसका नाम था-मंगल पाण्डे। यह तो तुम जानते ही होगे कि हमारे देश में अँग्रेजों ने दो सौ वर्षों तक राज किया। लेकिन, क्या तुम यह जानते हो कि अँग्रेज सबसे पहले सन् 1600 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के रूप में हमारे देश में व्यापार करने आये थे, लेकिन बड़ी चालाकी से उन्होंने यहाँ का राज हथिया लिया और कम्पनी की सरकार बनाकर राजकाज चलाते रहे। 1858 में कम्पनी की जगह उन्होंने सीधे अपनी सरकार बना ली। तो, हमारे देश में आज़ादी की यह पहली लड़ाई कम्पनी सरकार के दौरान ही लड़ी गयी, यह ध्यान रखना कि कम्पनी सरकार कोई अलग सरकार नहीं थी बल्कि अँग्रेजों की ही सरकार थी। मतलब यह कि अँग्रेजों का शासन हमारे देश में कम्पनी के ज़रिये स्थापित हुआ था।

कम्पनी की सरकार ने लोगों पर बहुत अत्याचार किये, भारत के पैदावार और वहां की खनिज सम्पदा को जमकर लूटा और लूटकर इंग्लैण्ड भेजती रही। उसने कई ऐसे कानून बनाये जो यहाँ के लोगों को जबरन स्वीकार करने पड़ते थे। जैसे एक कानून लॉर्ड डलहौजी ने बनाया। वे 1848 से 1856 तक यहां के गर्वनर जनरल थे। कानून द्वारा राज्यों को हड़पने का षडयन्त्र रचा गया था। इसमें यह कहा गया था कि ऐसा कोई भी क्षेत्र या राज्य जहाँ का राजा निःसंतान मर गया हो या वह कम्पनी की नज़रों में अयोग्य शासक हो तो उस क्षेत्र पर कम्पनी का अधिकार हो

जाएगा। यह सीधे सीधे राज्यों को अपने कब्जे में करने का तरीका था वास्तव में यह राज्य हड़प कानून ही था। इसके द्वारा लॉर्ड डलहौजी और लॉर्ड कैनिंग ने सतारा, नागपुर, झाँसी और अवध को कम्पनी के अधीन कर लिया। सन् 1764 में बक्सर का युद्ध जीतने के बाद कम्पनी का कब्जा बंगाल पर हो चुका था। अंतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह जफ़र को गद्दी से उतार दिया गया। कम्पनी सरकार के अत्याचार से किसानों, कारीगरों और समाज के हर वर्ग के लोगों में असंतोष था। किसान ज़मींदारों की दया पर थे। उनपर भारी लगान लगाया जाता और लगान की रकम न देने पर भारी भरकम जुर्माना लाद दिया जाता। यह लगान और जुर्माना कम्पनी के लिए वसूली जाती थी। जमींदार भी इन्हीं किसानों के दम पर ठाठ की जिन्दगी बिताते।

कम्पनी की नीतियों और कानूनों के खिलाफ़ लोगों के मन में बहुत गुस्सा था। कम्पनी सरकार की फौज में भारतीय सिपाहियों पर भी अत्याचार किये जाते थे, उन्हें अंग्रेज सैनिकों के मुकाबले काफी कम वेतन दिया जाता था और उन्हें मिलनेवाली सुविधाओं में कटौती की जाती थी। इससे सिपाही भी असंतुष्ट थे। इस गुस्से में एक घटना ने चिंगारी का काम किया और विद्रोह की आग धधक उठी। सिपाहियों को इस्तेमाल के लिए जो राइफल मिला हुआ था उसकी गोली का कारतूस मुंह लगाकर खोलना पड़ता था। कारतूस पर लगी चर्बी के बारे में सिपाहियों को यह सन्देह था कि इसमें सूअर और गाय की चर्बी ही है। इस चीज ने हिन्दू और मुस्लिम दोनों की धार्मिक भावनाओं को भड़का दिया। यह आग तेजी से फैली क्योंकि हिन्दुओं में गाय और मुसलमानों में सूअर खाना अधर्म माना जाता है। इसकी शुरुआत हुई कम्पनी सरकार की फौजी छावनियों से। सबसे पहले यह असंतोष बंगाल की बैरकपुर छावनी में मंगल पाण्डे के विद्रोह द्वारा प्रकट हुआ। तुममें से बहुतों को यह बात शायद मालूम न हो कि विद्रोह को एक दिन एक

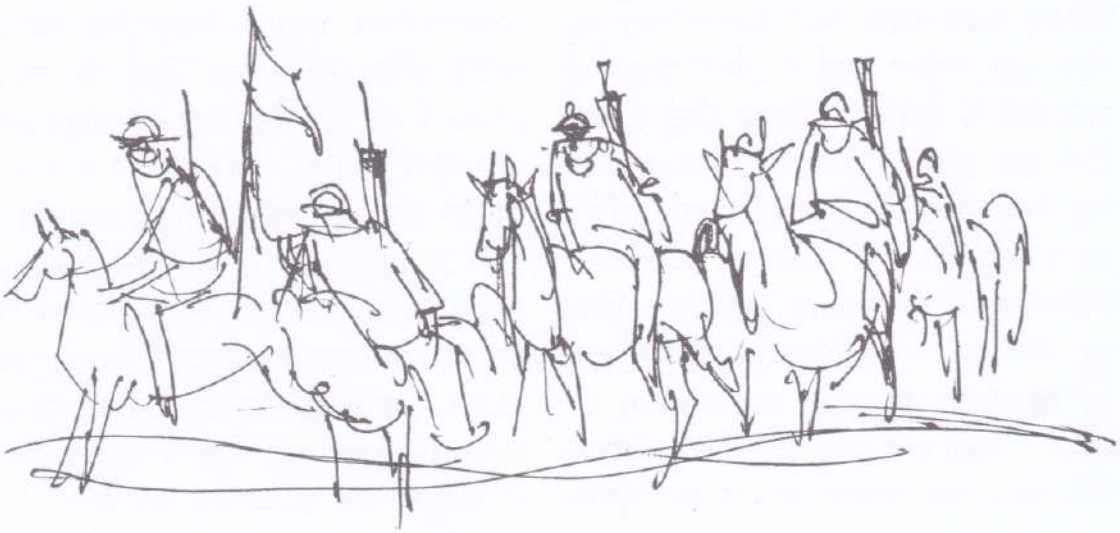

तय समय में शुरू करने की तैयारी पहले से कर ली गई थी लेकिन यहां एक बहुत बड़ी गलती यह हुई कि समय से पहले यानी 29 मार्च को ही यह बात सामने आ गई। हालाँकि मंगल पाण्डे को फाँसी दे दी गयी और उस चौंतीसवीं बटालियन को भंग कर दिया गया, कुछ सिपाहियों को सजा दी गयी लेकिन कम्पनी सरकार इस विद्रोह को फैलने से रोक नहीं पायी। उस बटालियन के सैनिक अपने अपमान का बदला लेने के लिए अवध लौटे और उसके बाद मेरठ की फौजी छावनी में विद्रोह भड़क उठा जो धीरे-धीरे अलग-अलग जिलों में फैलता हुआ दिल्ली पहुँच गया। बहादुर शाह जफ़र ने विद्रोह का साथ दिया। यही नहीं उन्होंनें इसका नेतृत्व करने की घोषणा कर दी। इस बीच अलग-अलग जगहों पर लोगों के छिटपुट विद्रोह होते रहे। मेरठ, बरेली, लखनऊ, कानपुर, झाँसी, इंदौर, बनारस, गाजीपुर, आजमगढ़, बिहार के आरा जिले में और पंजाब के कुछ जिलों में विद्रोहियों का कब्जा हो गया। झाँसी की रानी, तात्या टोपे, नाना साहिब, बेगम हजरत महल, कुँवर सिंह आदि ने इस संग्राम में अग्रणी भूमिका निभाई। यह संघर्ष पूरे एक वर्ष तक चला। इसी संघर्ष के दौरान कम्पनी सरकार द्वारा बहादुर शाह जफ़र के बेटों मिर्जा मुग़ल और मिर्ज़ा ख़ाजिर सुल्तान तथा पोते मिर्ज़ा अबू बकर को गोली से उड़ा दिया गया। दिल्ली में यह जगह आज भी खूनी दरवाज़ा के नाम से जानी जाती है, जो बहादुरशाह जफ़र मार्ग पर स्थित है।

हालाँकि इस विद्रोह की अपनी कमियों के कारण अँग्रेज सरकार इसे दबाने में सफल रही लेकिन उसे बहुत मेहनत करनी पड़ी। 1857 का यह संग्राम और मंगल पाण्डे सहित अन्य लोगों का बलिदान हमें इस बात की याद दिलाता है कि बहुत सारे निर्दोष लोगों पर हो रही जबरदस्ती, अन्याय और अत्याचार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाना सबसे अच्छी और बड़ी बात है। सबसे प्यारी और हिफ़ाजत करने लायक चीज़ है, आज़ादी।

कहानी

छांगुर शर्मा की क्लास

"मम्मी जल्दी मेरा टिफिन दो, मुझे देर हो रही है।"

"देती हूँ, अभी तो आधा घण्टा बाकी हैं।"

आज मोनू को स्कूल जाने की बहुत जल्दी हो रही थी। और हो भी क्यों नहीं, जब से उसके नये अध्यापक छांगुर शर्मा आये थे तब से बच्चों को रोज़ ही स्कूल जाने की जल्दी होने लगी थी। बच्चे इन्तज़ार करते कि कब छांगुर शर्मा सर की क्लास आये और दुनिया के बारे में रोचक बातें और नयी-नयी कहानियाँ सुनने को मिलें। नये मास्टर छांगुर शर्मा विज्ञान के अध्यापक थे। वे बच्चों को बहुत ही रोचक ढंग से सभी पाठ समझाते थे और कभी-कभी देश-दुनिया की रोचक बातें और कहानियाँ भी सुनाते थे। इसलिये अपने आने के कुछ ही दिनों में छांगुर शर्मा बच्चों के बीच बहुत लोकप्रिय हो गये। जल्दी-जल्दी चलकर मोनू स्कूल पहुँचा। अभी उसे और इन्तजार करना था क्योंकि विज्ञान की पढ़ाई तीसरे घण्टे में होती थी। किसी तरह रेंगते रेंगते दो घण्टियां बीत गईं। आखिर बच्चों का इन्तज़ार खत्म हुआ।

मास्टर जी क्लास मे आये। सभी बच्चों ने खड़े होकर उनका अभिवादन किया। आज सभी बच्चों के चेहरे पर खुशी देखकर छांगुर शर्मा भी खुश हो गये। उन्होंने क्लास शुरू की– बच्चो आज मैं आप सबको घर के इतिहास के बारे में बताऊँगा। पहले आप लोग बतायें की आपने किस-किस तरह के घर देखे हैं? दीपक ने खड़े होकर बताया – मैनें एक 25 मंज़िलवाला घर देखा है, बाप रे कितना ऊँचा था। मनीष ने बताया – एक बार जब मैं नानी के घर गया था तो मैने वहां केवल लकड़ी से बना एक घर देखा था। पिंकी ने खड़े होकर बताया – मास्टर जी मैने एक बार एक बड़ी नाव पर घर देखा था जो पानी में तैर रहा था। मास्टर जी ने हँस कर बताया – पिंकी वह घर नहीं था। दरअसल वह पानी का जहाज़ था जिसपर लम्बी यात्रा में रहने और दूसरे कामों के लिये कमरे बने होते हैं। फिर मास्टर साहब ने बताना शुरू किया – बच्चो हर जीव की तरह इन्सान को भी रहने के लिये बसेरे की जरूरत होती है। आज से हज़ारों साल पहले जब मनुष्य जंगलों में रहता था, उस समय मनुष्य गुफाओं में या पेड़ों की टहनियों और घासफूस से बनी झोपड़ियों में रहता था। उस समय का समाज आदिम या कबीलाई था। रोनू पूछ बैठा – मास्टर जी कबीलाई समाज क्या होता है? मास्टर जी ने बताया – कबीलाई समाज में पूरा कबीला एक बड़े परिवार की तरह होता है जिसका मुखिया कबीले का सरदार होता है। सभी मिलजुल कर अपनी जिन्दगी चलाने के लिये शिकार करते और कन्द-मूल जुटाते थे। इनका कोई निश्चित निवास भी नहीं होता था। जहाँ इनको जीने रहने लायक परिस्थितियाँ मिलती थीं ये वहीं जाकर रहने लगते थे। आग की खोज के बाद वे अपनी झोपड़ियों और गुफाओं के सामने आग जलाये रखते। इससे उन्हें जंगली जानवरों से सुरक्षा

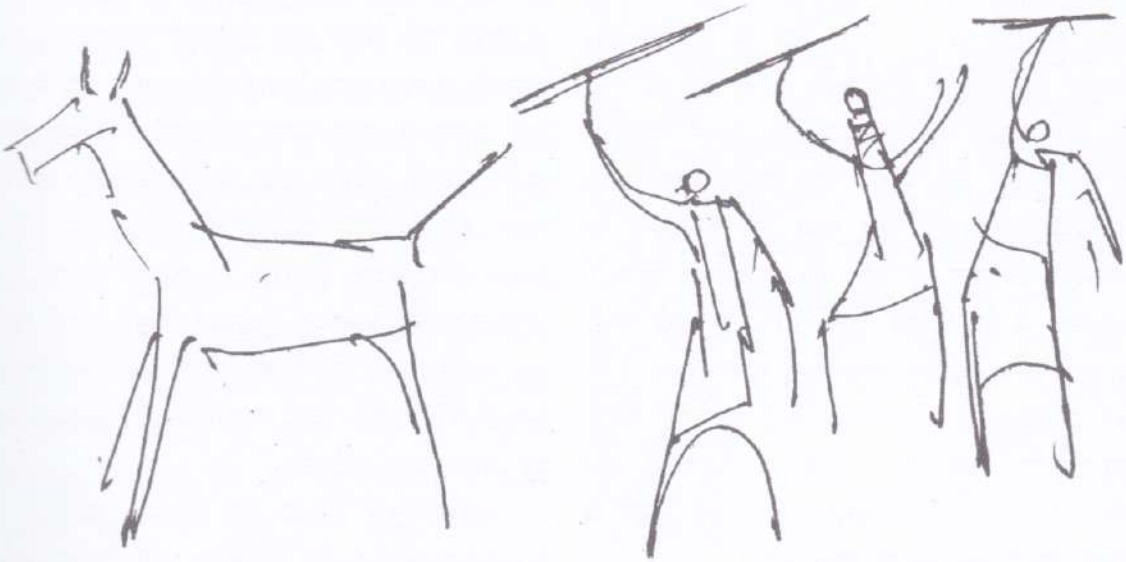

मिलती थी।

दुनिया में अलग-अलग जगहों पर घर बनाना अलग-अलग समयों में शुरू हुआ। मिस्र और पश्चिमी एशिया में ईसा से 10000 साल पहले (यानी आज से 12000 साल पहले), ग्रीस (यूनान) में 6000 ईसा पूर्व, तो इंगलैंड में 3000 ईसा पूर्व में शुरू हुआ। इसके अलावा हर देश के वातावरण और परिस्थितियों के अनुसार वहां के घर बनाये जाते थे। इसी बीच राजू खड़ा हो गया और बोला - मास्टर जी मेरे गाँव में लोग घास-फूस की झोपड़ी में रहते हैं तो क्या उसे कबीला कहेंगे? इस बात पर सभी बच्चे हँस पड़े। मास्टर जी ने बताया - राजू, तुम्हारे गाँव में लोग अगर झोपड़ियों में रहते हैं तो उसका कारण उनकी गरीबी है। पक्के मकानों के लिये उनके पास खर्च करने लायक पैसे नहीं होते। पर कबीलाई युग में पैसे का सवाल नहीं था। पक्के मकानों की तकनीक अभी तक खोजी नहीं जा सकी थी इसलिये लोग घास-फूस के घर बनाते थे। समाज का विकास हुआ और एक ऐसा समाज आया जिसे दास समाज के नाम से जाना जाता है। इस समय तक मनुष्य के औजार और दिमाग दोनों पहले से अधिक विकसित हो चुके थे। अब पत्थरों को काटकर दास अपने मालिकों के लिये बड़े-बड़े महल और किले बनाने लगे। पर दास अभी भी घास फूस की झोपड़ियों या जानवरों के बाड़े में सोते थे। दासों की ज़िन्दगी जानवरों से भी बदतर होती थी और उन्हें कोड़े मारकर काम कराया जाता था। इसी समय दासों की सहायता से दुनिया की कई अनोखी चीजों का निर्माण हुआ। इनमें मिस्र के पिरामिड और चीन की महान दीवार प्रमुख हैं। इनको बनाने में बीसों साल और लाखों दास लगे।

बच्चों को यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि पहले लोगों को दासों के रूप में जानवरों की तरह रखा जाता था।

मास्टर जी ने कहना जारी रखा- उसके बाद जब हमारा समाज और विकसित हुआ तो खरीदे बचे जाने वाले दास नहीं रहे। लेकिन जो समाज बना उसमें कुछ हद तक स्वतंत्र किसान आये जिनके पास जमीन का एक छोटा टुकड़ा था लेकिन उनकों सामन्तों और जागिरदारों के खेतों में बेगार करनी पड़ती और अपनी खेती पर लगान देना पड़ता। इस समाज में भी ऐसे मेहनत करनेवाले लोगों के हिस्से में छोटे-छोटे और कच्चे मकान ही आये। ये अकसर घास-फूस, लकड़ी और मिट्टी की सहायता से बनते थे। घर बनाने में लोग एक-दूसरे की सहायता करते थे। दूसरी तरफ सामंत और राजा भव्य इमारतों में रहते थे। उनके महलों को बनाने में पक्की ईंटों, कीमती पत्थरों, लकड़ियों और धातुओं का इस्तेमाल होता था। सीमेंट की खोज अभी नहीं हुई थी। उसके स्थान पर चूने से बने गारे या मिट्टी के गारे का इस्तेमाल होता था। राजा या सामंत जनता से वसूले गये लगान का इस्तेमाल इन महलों को बनवाने में तथा अन्य ऐश्वर्य के साधन जुटाने में खर्च करते थे। उस समय के औजारों में मुख्यत: हथौड़े, छिन्नी, साहुल सूत्र, करनी, फावड़ा इत्यादि मुख्य थे। इसलिए महलों को बनाने में बहुत समय और बहुत कारीगर व मजदूर लगते थे। ताजमहल को बनाने में 20000 लोगों ने 20 वर्ष तक काम किया तब जाकर कहीं यह बन पाया। महलों को बनाने वाले कारीगरों के खुद अपने घर बहुत छोटे होते थे।

इसके बाद मास्टर जी ने आगे बताया - बच्चों जब समाज और विकसित हुआ तो नये-नये

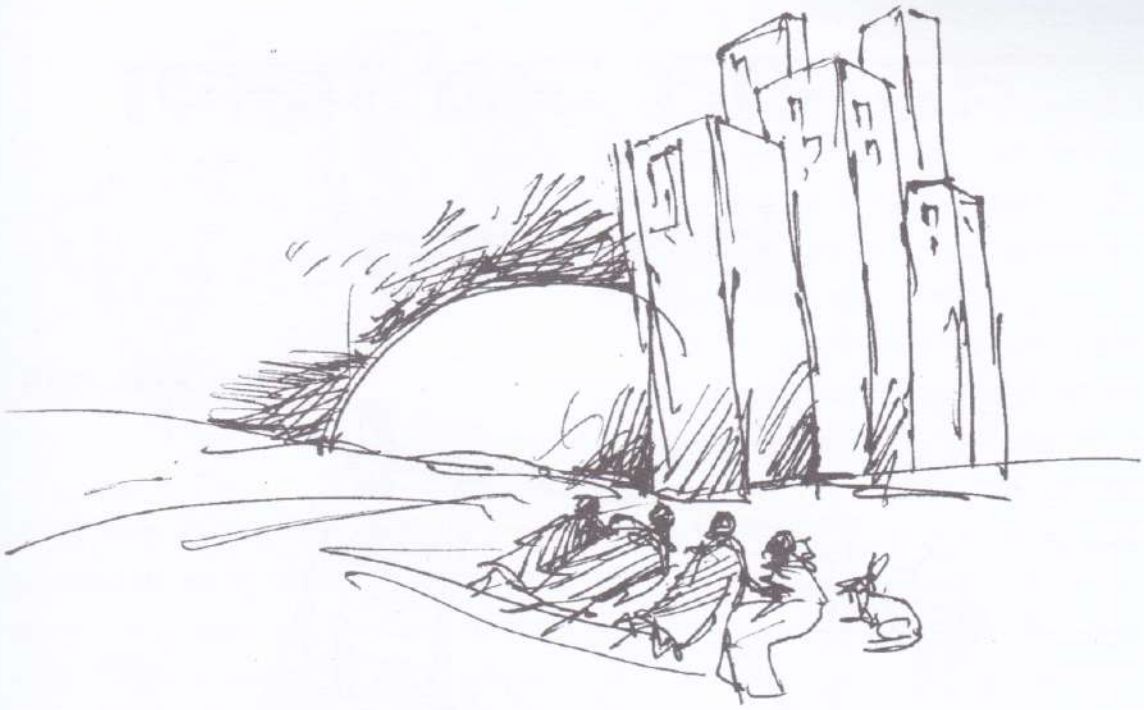

औज़ार बनने लगे जिन्होंने भवन का निर्माण करना आसान बना दिया। राजाओं का युग अब बीत चुका था। लोगों को स्वतंत्र रूप से काम करने, व्यापार करने की आज़ादी मिली। आज के घरों में भी विशेष बदलाव हुआ है। नये औज़ारों के विकास के साथ-साथ नये-नये पदार्थों जैसे सीमेंट, स्टील, कंक्रीट, प्लाई आदि का इस्तेमाल शुरू हुआ। आज नयी विशालकाय मशीनों और नये पदार्थों के इस्तेमाल से बहुत कम समय में बहुत ऊँचे-ऊँचे भवनों का निर्माण सम्भव हुआ है। घरों के निर्माण का काम आगे बढ़कर आज बहुत बड़े व्यवसाय का रूप ले चुका है। इसमें अब यह देखा जाता कि किस जगह और किस तरह का मकान बनाने में आगे चल कर अच्छी कमाई हो सकती है। बच्चे बहुत ही रुचि से सबकुछ सुन रहे थे। इसी बीच पिंकी ने पूछा- मास्टर जी, हमारे पास इतनी अच्छी मशीनें हैं और नये औजार हैं पर आज भी कुछ लोग फुटपाथों पर क्यों सोते हैं? पिंकी के इस प्रश्न ने सभी बच्चों को सोचने पर मजबूर कर दिया कि क्या कारण है कि सब कुछ होने के बावजूद सबके पास घर नहीं है। इसपर मास्टर जी ने समझाया - बच्चों हमारे समाज में हर चीज़ प्रचुर मात्रा में मौजूद है पर इन सब पर अधिकार केवल कुछ लोगों का है। आज भवन निर्माण भी एक उद्योग है और उन्ही के लिये उपलब्ध है जिनके पास पैसे और साधन हैं। हमारे देश में 18 करोड़ लोग पुटपाथों पर सोते हैं तथा 18 करोड़ लोग झुग्गी-झोपड़ियों में रहते हैं। इसलिये आज के समाज में सबकुछ उपलब्ध होने के बाद भी सबके घर नहीं हैं। सारे बच्चों को आज बहुत कुछ सीखने को मिला था। मोनू के मन में अभी भी वही बात घूम रही थी कि ग़रीबी ही वह कारण है कि सबकुछ उपलब्ध रहते हुए भी लोग घर नहीं बनवा पाते।

नितेश विमुक्त

वह रात जब पलंग गिर पड़ा

जेम्स थर्बर

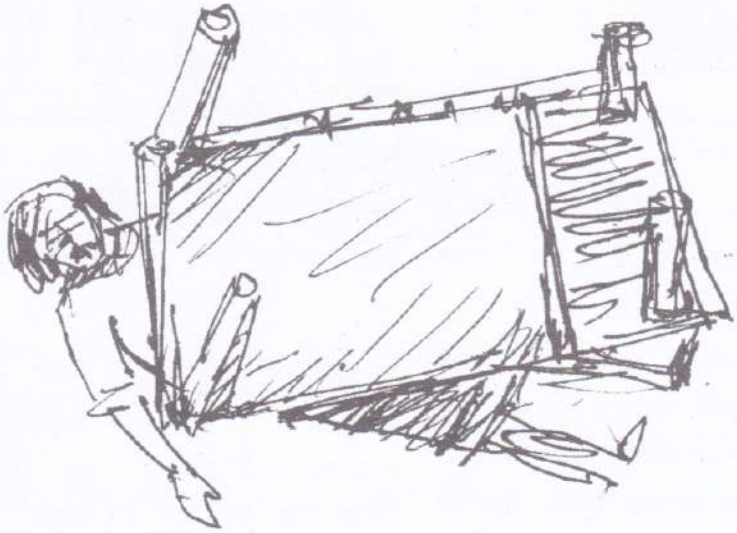

मैं अपने बचपन का एक मजेदार किस्सा तुम्हें सुनाता हूं। उन दिनों हम सनकपुर में रहने आये थे। बात उस रात की है जब पलंग उलटकर ऊपर आ गिरा था। इस पूरी घटना को लिखने के बजाय सुनाना ज्यादा मजेदार होता। इसके लिए बस करना यह होता कि फर्नीचर को यहां-वहां फेंका जाये, दरवाजों को खड़खड़ाया जाये, कुत्ते की तरह भौंका जाये ताकि इस असंभव सी लगनेवाली घटना के लिए एक माहौल तैयार किया जा सके और इस पर कुछ विश्वास जम सके। आप मानें या न मानें यह घटना घटी जरूर।

हुआ यह कि एक रात मेरे पिताजी ने अटारी में सोने का फैसला किया जिससे वे अकेले में सोच सकें। मेरी मां इसके सख्त खिलाफ़ थीं। वह नहीं चाहती थी कि पिताजी वहां सोयें! मां को लगता था कि वहां बिछा हुआ पुराना पलंग बड़ा खतरनाक है। वह इतना ढुलमुल है कि जरा-सा हिला नहीं कि टूट जायेगा और सिरहाने लगा लकड़ी का तख्ता उनके सिर पर आ गिरेगा और उनकी जान लेकर छोड़ेगा। पिताजी भला उसकी बात कहां माननेवाले थे! ठीक सवा दस बजे उन्होंने अटारी का दरवाजा बंद किया और संकरी घुमावदार सीढ़ियां चढ़ गये। उनके बिस्तर में घुसते ही पलंग चरमराया जैसे खतरे की चेतावनी दे रहा हो। दरअसल, उस पलंग पर

दादाजी सोया करते थे, पर पिछले कुछ दिन से वह गायब थे। जब भी लौटकर आते तो बिलकुल आपे से बाहर होकर जाने क्या-क्या बड़बड़ाते रहते- 'संसद में महामूर्खों का जमघट लगा है' 'सेना और पुलिस की हालत बिलकुल मदारी की बंदरिया जैसी है, जैसा वे चाहें उसे नचा लें।'

उन दिनों मेरा फूफेरा भाई, तन्मय तड़ीमार, हमारे यहां रहने आया हुआ था। वह इस गलतफहमी का मारा था कि सोते-सोते अचानक उसकी सांस रुक जायेगी। उसका मानना था कि अगर उसे रात में हर घंटे न जगाया जाये तो वह दम घुटने से मर जायेगा। इसलिए उसे आदत थी कि सुबह होने तक वह हर घंटे के लिए अलार्म लगाता था। मैंने उसे यह आदत छोड़ने के लिए बहला लिया। मैं उसी कमरे में सोता था। मैंने उससे कहा कि मैं इतनी कच्ची नींद सोता हूं कि अगर मेरे कमरे में कोई सांस लेना बंद कर दे, तो मैं तुरन्त जाग जाऊंगा। उसने पहली ही रात मेरी परीक्षा ली। इसका अंदेशा मुझे पहले से ही था। मेरी सांसों की नियमित रफ्तार सुनकर जब उसे लगा कि मैं सो गया हूं, तो उसने अपनी सांस रोक ली। मैं तो वैसे ही सोने का नाटक कर रहा था, इसलिए मैंने उसे तुरन्त आवाज दी। इससे उसका डर थोड़ा कम तो हुआ, फिर भी एहतियात के लिए उसने एक बोतल कपूर का सत् अपने सिरहाने की मेज पर रख लिया। उसने कहा कि अगर कहीं गलती से मैं उसे नहीं जगा पाया और उसका दम घुटने लगा तो वह झट से कपूर सूंघ लेगा जिससे दोबारा होश में आ सके।

अपने परिवार में तन्मय ही कोई अकेला झक्की नहीं था। उसकी एक बूढ़ी चाची थी, नाम था सुलक्षणा तड़ीमार । वे अपने मुंह में दो उंगलियां डालकर बिल्कुल आदमियों की तरह सीटी बजा सकती थीं। उन्हें वहम था कि उनकी मौत अक्कल बाजार में ही होगी क्योंकि उनकी पैदाइश अक्कल बाजार में हुई है और उनकी शादी भी अक्कल बाजार में ही हुई है।

निर्बला नकचढ़ा उसकी बड़ी बुआ थी, वह भी कुछ कम न थीं। हर रात बिस्तर में घुसने से पहले वे यही सोचतीं कि कोई चोर उनके घर में घुसेगा और दरवाजे के नीचे नली डालकर क्लोरोफार्म छिड़क देगा। घर का कीमती सामान खोने से ज्यादा उन्हें बेहोशी की दवा से डर लगता था। इसलिए वे इस विपदा से बचने के लिए हर रोज अपना पैसा, जेवर और दूसरे कीमती सामान अपने कमरे के बाहर करीने से सजा देतीं और साथ में एक नोट लगा देतीं : ''यही मेरा सब कुछ है। कृपया इसे ले लीजिए। बस अपना क्लारोफार्म मत छिड़किए, क्योंकि मेरे पास अब कुछ नहीं बचा है।''

छोटी बुआ, निर्भया नकचढ़ा को भी चोरों से उतना ही डर लगता था, लेकिन उन्होंने इसका सामना करने के लिए एक तरकीब खोज ली थी। उन्हें पक्का विश्वास था कि पिछले चालीस सालों से हर रात उनके घर में चोर घुसते ही हैं।

आज तक घर से कोई चीज गायब नहीं हुई, यह चोरों के न आने का सबूत नहीं था। वे हमेशा दावा करती थीं कि चोर आते तो हैं पर वे अपने जूते फेंककर उन्हें भगाने में कामयाब हो जाती हैं। सोने से पहले वे अपने घर के सारे जूते इकट्ठा करके ऐसी जगह रख लेतीं जहां वे आसानी से हाथ में आ जायें।

बत्ती बुझाने के 5 मिनट बाद ही वे बिस्तर पर उठकर बैठ जातीं और चिल्लातीं -''कौन है?'' उनके पति ने चालीस साल पहले ही इस पूरी स्थिति को अनदेखी करना सीख लिया था। वे या तो गहरी नींद में होते, या फिर गहरी नींद में सोने का बहाना कर रहे होते। चाहे जो भी हो, वे उनके चीखने-चिल्लाने पर टस से मस नहीं होते। आखिर वे खुद उठतीं, दबे पांव दरवाजे तक जातीं और उसे जरा-सा खोलकर जोड़ी का एक जूता हाल में एक तरफ फेंकतीं और दूसरा दूसरी तरफ दे मारतीं। किसी-किसी रात तो वे सारे जूते फेंक देतीं, तो कभी एकाध जोड़े से ही काम चल जाता।

लेकिन मैं उस रात की घटना की बात कर रहा था जब पिताजी के ऊपर पलंग गिर पड़ा। आधी रात थी। हम सब सोये थे। क्या हुआ था यह समझने के लिए पहले यह जानना जरूरी है कि कमरे कहां-कहां थे और उनमें सब किस तरह सोये थे। जीने के ऊपर और पिताजी के अटारी वाले कमरे के ठीक नीचे मेरी मां के साथ मेरा छोटा भाई गंभीर सोया था। गंमीर कभी-कभी नींद में 'अपने लिए जिये तो क्या जिये' और 'कदम कदम बढ़ाये जा' जैसे गाने गाता था। तन्मय और मैं इसके साथ वाले कमरे में सोये थे। मेरा दूसरा भाई जयन्त हॉल के दसरी ओर सामनेवाले कमरे में सोया था। हमारा बड़ा सा कुत्ता सुल्तान हॉल में सोया था।

मेरा पलंग सैनिकों के लिए बनी फोल्डिंग चारपाई जैसा था। इसमें बीच का पल्ला सीधा मगर कम चौड़ा होता है। किनारे पर दो और पल्ले नीचे लटके होते हैं। आराम से सोने के लिए इन पल्लों को खोलकर बीच वाले की सीध में लाना पड़ता है। इसमें सिर्फ एक ही दिक्कत है कि अगर सोते वक्त गलती से बिल्कुल किनारे पर सरक गये तो पूरा पलंग धड़ाम से उलटकर आपके ऊपर आ जाता है। और रात दो बजे के आसपास बिल्कुल यही हुआ।

मेरी मां बाद में इस किस्से की शुरुआत यूं करती -''उस रात जब तुम्हारे पिताजी के ऊपर पलंग गिर गया था.....।'' मैंने तन्मय से झूठ बोला था। दरअसल मैं घोड़े बेचकर सोता था। आसानी से मेरी नींद नहीं खुलती। मुझे पता ही नहीं चला कि कब मैं बिस्तर से गिरा और कब वह लोहे का पलंग मेरे ऊपर उलट गया, कुछ इस तरह कि जैसे मेरे ऊपर तम्बू तन गया हो। चोट लगना तो दूर मैं आराम से गर्म बिस्तर में लिपटा सोया रहा। मुझे सिर्फ जरा सा होश आया और फिर आंख लग गई। पर इस धमाके से बगल के कमरे में सोई मां की नींद फट से खुल गई। उसने फौरन तय कर लिया कि जिस बात का उसे डर था वही हुआ है और लकड़ी का बड़ा पलंग पिताजी पर गिर गया है। वह जोर से चिल्लाई -'गिर गया, गिर गया, सब लोग ऊपर चलो!'' मेरी पलंग गिरने की आवाज से तो नहीं पर मां की चीख पुकार से उसके साथ सोया गंभीर जाग गया। उसको लगा कि मां को बेवजह दौरा पड़ गया है और वह उन्हें शांत करने की कोशिश करने लगा, ''मां, तम्हें कुछ नहीं हुआ है तुम बिल्कुल ठीक हो।'' दस सेकेंड तक दोनों

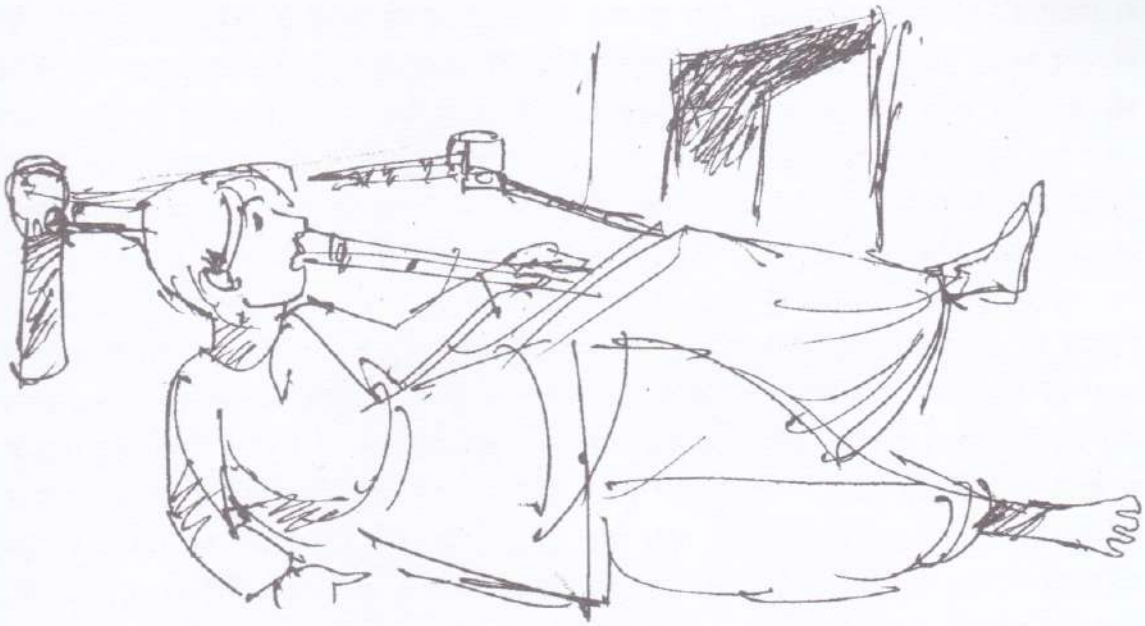

अपनी-अपनी धुन में चिल्लाते रहे, ''सब लोग ऊपर चलो'' और ''तुम बिल्कुल ठीक हो।'' इससे तन्मय जाग गया। इस समय मुझे हल्का-सा आभास तो था कि क्या हो रहा है, लेकिन अभी तक मैं यह नहीं समझ पाया था कि मैं चारपाई के ऊपर नहीं, बल्कि नीचे हूं । डर और आशंका की इस चीख चिल्लाहट में तन्मय फौरन इस नतीजे पर पहुंच गया कि उसका दम घुट गया है और हम सब उसको होश में लाने की कोशिश कर रहे हैं। हल्के-हल्के कराहते हुए उसने अपने सिरहाने पड़े कपूर के सत् वाले गिलास को पकड़ा और सूंघने की बजाय अपने ऊपर उलट लिया। पूरा कमरा कपूर की तीखी गंध से महकने लगा। ''आह- उफ- आह'' तन्मय पानी से बाहर आई मछली की तरह तड़पने लगा। उस तीखी गंध की महक में वह अपना दम घोंटने में लगभग सफल ही हो गया था। वह अपने बिस्तर से कूदा और खुली खिड़की की तलाश करने लगा, पर एक बंद खिड़की ही उसके हाथ आई। हाथ के एक मुक्के से उसने खिड़की का शीशा तोड़ दिया और मुझे नीचे की गली में कांच के बिखरने की खनक सुनाई दी। अब कहीं जाकर मैंने जब उठने की कोशिश की तो मुझे यह अजीबोगरीब अहसास हुआ कि पलंग मेरे ऊपर है, नीचे नहीं। नींद की उस खुमारी में मुझे लगा कि यह सारा हंगामा मुझे उस खतरनाक स्थिति से बाहर निकालने के लिए हो रहा है। मैं चीखने लगा, ''मुझे बाहर निकालो, मुझे बाहर निकालो!'' शायद मुझे ऐसा कुछ लग रहा था कि जैसे मैं किसी खदान में दबा हुआ हूं। उधर तन्मय महोदय कपूर के धुएं में ही छटपटा रहे थे। वैसी ही चीखती हुई मेरी मां और उसके ठीक पीछे वैसे ही चीखता हुआ गंभीर दोनों इस वक्त अटारी के दरवाजे को खोलने में जुटे हुए थे,

जिससे ऊपर जाकर पिताजी के शरीर को मलबे से निकाला जा सके। पर दरवाजा जाम हो गया था और खुलने का नाम नहीं ले रहा था। दरवाजे को जोर-जोर से धकेलने से हल्ला और शोरगुल और बढ़ रहा था। जयन्त और हमारा कुत्ता सुल्तान दोनों अब उठ गये थे, एक चिल्ला रहा था और दूसरा भौंक रहा था।

सबसे दूर और कुंभकरणी निद्रा में सोये पिताजी भी अब दरवाजे के पीटने की आवाज से जाग गये थे। उन्होंने सोच लिया कि घर में आग लग गई है। हल्की, उनींदी आवाज में वह धीरे से बोले - '' मैं आ रहा हूं, भई आ रहा हूं।'' पूरे होश में आने में तो उन्हें कई मिनट लगे। मेरी मां पहले ही यह मान बैठी थी कि वे पलंग के नीचे दबे हुए हैं। उनका ''आ रहा हूं'' सुनकर उन्हें लगा कि दुखी कातर स्वर में मरते वक्त वे ईश्वर को पुकार रहे हैं और वह चीखीं -''हाय, उनका अंतिम समय आ गया है!''

जवाब तन्मय ने दिया, ''मैं बिल्कुल ठीक हूं!'' वह चीख-चीखकर सांत्वना देने लगा- ''मैं बिल्कुल ठीक हूं।'' उसे अब भी यही लग रहा था कि मां की चिंता का कारण उसके खुद के करीब खड़ी मौत ही है। आखिरकार मैंने बल्ब का स्विच ढूंढकर कुंडी खोल ही ली। तन्मय और मैं दौड़कर अटारी के दरवाजे पर पहुंचे। हमारे कुत्ते को तो पहले ही तन्मय खास पसंद नहीं था, यह सोचकर कि हंगामे की जड़ वहीं है, वह उसपर झपट पड़ा। जयन्त ने कुत्ते को खींचकर दबोच लिया। जीने के ऊपर पिताजी के बिस्तर में से निकलने की आवाज आई। जयन्त ने दरवाजे को झटके से खोल लिया और पिताजी नींद से भरे और चिड़चिड़े पर सही सलामत सीढ़ियों से नीचे उतर आये। मां उन्हें देखते हुए दहाड़ मारकर रोने लगी। सुल्तान गुर्राने लगा। ''अरी भागवान, ये सब क्या हो रहा है?''

काफी देर के बार कहीं जाकर यह गोरखधंधा सबकी समझ में आया। फर्श पर नंगे पैर घूमने से पिताजी को जुकाम तो जरूर हुआ, पर बाकी सब सही सलामत था। ''मुझे खुशी है,'' मां बोली जिसे हर चीज में कुछ अच्छा ही ढूंढनें की आदत है, ''कि तुम्हारे दादाजी यहां नहीं थे।''

फिल्म कोना

ईरानी फिल्म

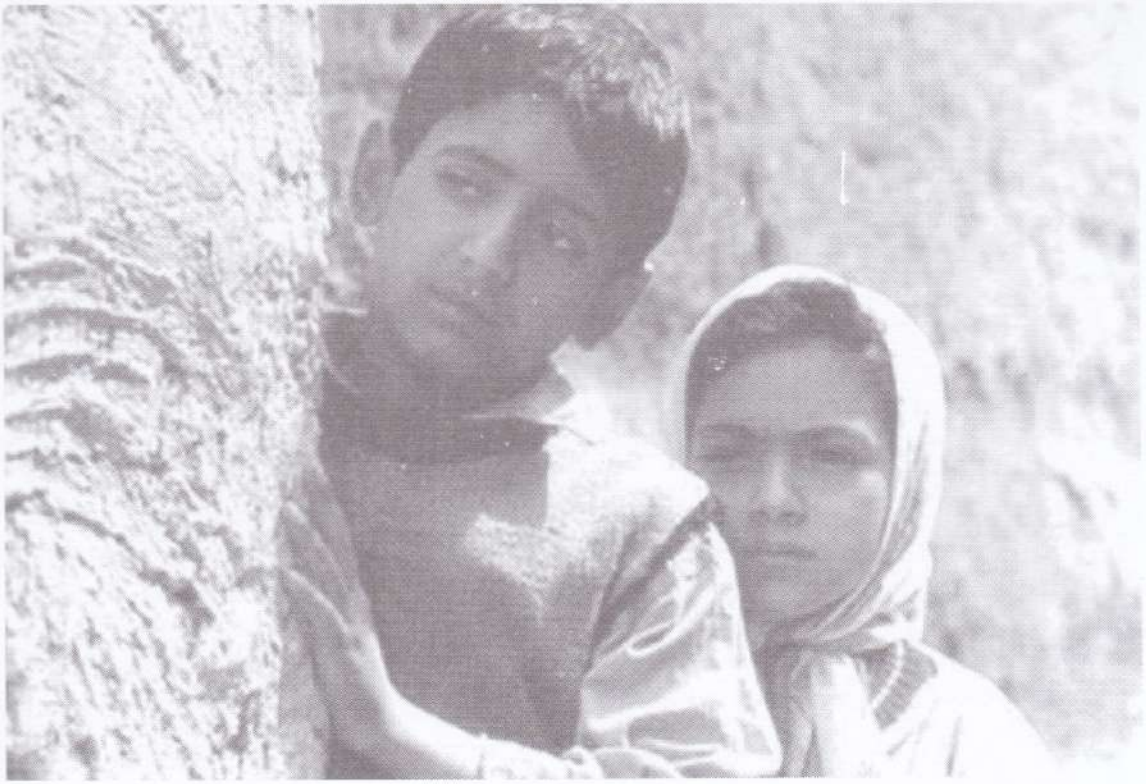

आसमान के बच्चे
(चिल्ड्रेन ऑफ़ हेवेन)

'बच्चेहा-ए-आसमां' (आसमान के बच्चे) ईरान के प्रसिद्ध फिल्मकार माजिद मजीदी की बहुत बढ़िया फिल्म है। 1997 में बनी यह फिल्म दुनियाभर में देखी और सराही गयी है और इसके आधार पर कई दूसरी भाषाओं में भी फिल्में बनी हैं। हिन्दी में भी दो साल पहले इसी की नकल पर 'बम-बम बोले' नाम से एक फिल्म बनी थी। लेकिन वह ईरानी फिल्म की बस एक पैरोडी भर थी। न तो वह बच्चों के दिलों को छू पाई न बड़ों के। जबकि 'आसमान के बच्चे' बड़ों और बच्चों दोनों को गहराई तक प्रभावित करती है।

फिल्म की कहानी

फिल्म की शुरुआत इस दृश्य से होती है कि करीब 10 साल का बच्चा अली अपनी छोटी बहन ज़हरा के गुलाबी जूतों की मोची से मरम्मत करवाने के बाद वापस लौट रहा है। एक

जगह वह जूतों की थैली को रखकर आलू खरीदने लगता है। इसी बीच एक कूड़ा बीननेवाला आदमी बेकार फेंकी हुई समझकर जूतों की थैली लेकर चला जाता है। अली घबराकर जूते ढूँढ़ने लगता है। सब्जियों के बक्सों के पीछे ढूँढ़ने के चक्कर में उससे कुछ टोकरियां गिर जाती हैं और दुकानदार नाराज होकर उसे भगा देता है।

अली का परिवार ईरान की राजधानी तेहरान की एक गरीब बस्ती में रहता है। परिवार में पैसों की काफी तंगी रहती है, इसलिए उसे अपनी अम्मी और अब्बा को जूते गायब होने के बारे में बताने से डर लगता है। वे जिस घर में रहते हैं उसका पांच महीने से किराया न दे पाने के कारण मकानमालिक अली की मां को बुरा-भला कहता है। जिस दुकान से वे खाने-पीने का सामान खरीदते हैं उसका भी काफी उधार चढ़ गया होता है। अली अपनी बहन ज़हरा को जूते गायब होने के बारे में बताता है और दोनों तय करते हैं कि अपनी मां को इसके बारे में नहीं बतायेंगे।

उसी रात, अली के पिता उसे डांटते हैं कि वह अपनी बीमार मां के काम में हाथ नहीं बंटाता। अपना होमवर्क करते समय दोनों भाई बहन बिना बोले, कागज के चिटों पर लिखकर एक-दूसरे से बात करते हैं ताकि उनके अम्मी और अब्बू को पता न चले कि वे बात कर रहे हैं। दोनों परेशान हैं कि अब क्या किया जाये। वे यह तरकीब निकालते हैं कि अली के जूतों को वे बांटकर पहनेंगे। ज़हरा उन्हें सुबह पहनकर स्कूल जायेगी और लौटकर अली को जूते दे देगी जिससे कि वह दोपहर को स्कूल जा सके। अली

फिल्म का एक पोस्टर

को परीक्षा में अच्छे अंक मिलने पर उसके टीचर उसे सुनहरे रंग का पेन ईनाम में देते हैं। अली वह पेन ज़हरा को दे देता है ताकि जूते खोने का दुख कुछ कम हो सके।

ज़हरा के स्कूल से लौटने के बाद उसके जूते पहनकर जाने के चक्कर में अली बहुत तेज दौड़ने के बावजूद तीन बार स्कूल देर से पहुंचा। पहली बार प्रिंसिपल ने उसे कुछ नहीं कहा, दूसरी बार अली को कसकर डांट पिलाई और जब तीसरी बार वह देर से स्कूल गया तो उसे वापस घर भेज दिया गया। प्रिंसिपल ने कहा कि वह अपने पिता को लेकर आये। इस बीच अली के पिता घर का खर्च चलाने के लिए बहुत कड़ी मेहनत कर रहे थे। उनके बारे में सोचकर अली की आँखों में आँसू भर आये। क्लास टीचर ने उसकी आंखों में आँसू देखकर प्रिंसिपल से कहा कि अली पढ़ने में बहुत अच्छा है इसलिए उसे एक मौका और दिया जाये।

एक दिन ज़हरा ने देखा कि उसी के स्कूल की एक दूसरी लड़की रोया वही गुलाबी जूते पहने हुए है। स्कूल की छुट्टी के बाद ज़हरा ने

काम ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थककर अली अपने पिता की गोद में ही सो गया

चुपके से रोया के घर तक उसका पीछा किया। इसके बाद वह अली को साथ लेकर दुबारा वहां गयी ताकि झगड़ा करके अपने जूते वापस ले आये। वे रोया के घर के पास छिपकर देखते हैं। रोया के पिता वही कूड़े बीननेवाला व्यक्ति है जो ज़हरा के जूते उठाकर ले गये थे। अली और ज़हरा जब देखते हैं कि रोया के पिता अन्धे हैं। और उनके परिवार की हालत और भी बुरी है तो वे बिना कुछ कहे वापस लौट जाते हैं। ज़हरा स्कूल में रोया से दोस्ती कर लेती है। स्कूल में खूब अच्छे ढंग से पढ़ाई करने पर रोया के लिए उसके पिता नीले रंग के नये जूते ला देते हैं और ज़हरा वाले जूते फेंक देते हैं। जब ज़हरा को अपनी नई दोस्त से यह बात पता चलती है तो वह बहुत दुखी होती है।

इस बीच अली के पिता बागवानी के कुछ औजार खरीदते हैं और अली को साथ लेकर उत्तरी तेहरान के अमीर इलाकों में जाते हैं। उनको यह उम्मीद थी कि उन्हें वहां कुछ घरों में माली का काम मिल जायेगा। वे कई घरों में कोशिश करते हैं मगर उन्हें कहीं काम नहीं मिलता। वहाँ सारी बड़ी-बड़ी कोठियों के ऊँचे-ऊँचे फाटक बन्द होते हैं और दरवाज़े पर लगे इंटरकॉम फोन से बताना पड़ता है कि वे क्यों आये हैं। अली के पिता इंटरकॉम पर बात करने से घबरा जाते हैं लेकिन अली उनकी मदद करता है और उत्साह से बताता है कि वे पौधे लगाना, कटाई-छँटाई, दवा डालना, घास काटना सबकुछ कर सकते हैं। आखिरकार वे एक बड़े से मकान में पहुंचते हैं जहां छह साल का एक लड़का अलीरज़ा अपने दादाजी के साथ रहता है। वहां अली के पिता को काम मिल जाता है और अली

ईनाम में जूते पाने के लिए अली 4 किमी लम्बी दौड़ में हिस्सा लेता है

उस बीच अलीरज़ा के साथ खेलता है। काम खत्म होने पर अली के पिता को अच्छे पैसे मिल जाते हैं और दोनों खुशी-खुशी घर की ओर चल पड़ते हैं। रास्ते में अली धीरे से कहता है कि ज़हरा को अब नये जूतों की जरूरत है। उसके पिता भी कहते हैं कि हां, ये अच्छी बात है, बच्चों को नये जूते तो चाहिए। लेकिन उनकी खुशी कुछ ही देर तक रह पाती है क्योंकि उनकी साइकिल का ब्रेक फेल हो जाता हैं और वे गिर जाते हैं। अली के पिता को चोट लग जाती है और अब वे कई दिनों तक काम करने लायक नहीं रहते।

कुछ दिन बाद अली को पता चलता है कि 4 किलोमीटर की ईनामी दौड़ होने वाली है जिसमें कई स्कूलों के बच्चे हिस्सा लेंगे। पहले नम्बर पर आनेवाले को एक हफ्ते तक बच्चों के कैंप में छुट्टी मनाने का मौका मिलना था। लेकिन अली तो तीसरे नम्बर पर आना चाहता था क्योंकि तीसरे ईनाम के तौर पर एक जोड़ी दौड़नेवाले जूते मिलने वाले थे। अली दौड़ में हिस्सा लेकर जी जान से दौड़ता है। वह तीसरा ईनाम पाना चाहता है ताकि उसे अपनी बहन के लिए जूते मिल जायें। लेकिन न चाहते हुए भी अली प्रथम पुरस्कार जीत जाता है। दौड़ के दृश्य बच्चों को बेहद रोमांचक लगेंगे।

दौड़ के बाद अली घर लौटता है। ज़हरा वहां उसका इंतजार कर रही होती है। अली दौड़ में तीसरा ईनाम न जीत पाने से बहुत निराश है। वह इसके बारे में अपनी बहन को बताना चाहता है लेकिन उसी समय उनकी मां ज़हरा को बुला लेती हैं। एक अलग दृश्य में अली के पिता साइकिल से घर लौटते हुए दिखाई देते हैं। उनकी साइकिल से एक जोड़ी सफेद जूते और एक जोड़ी गुलाबी जूते लटक रहे हैं।

अंतिम दृश्य में अली दुखी होकर बैठा है क्योंकि रेस में दौड़ने से उसके जूते बिलकुल फट गये हैं। उसके पैरों में छाले पड़ गये हैं और वह उन्हें आराम देने के लिए पानी से भरे गड्ढे में डालता है। इसी के साथ फिल्म खत्म हो जाती है लेकिन वह देखनेवालों के दिलो-दिमाग पर गहरा असर छोड़ जाती है।

दो छोटे बच्चों के इर्द गिर्द घूमने वाली यह फिल्म दिखाती है कि किस तरह तमाम तरह की परेशानियों के बीच रहते हुए वे एक दूसरे का ख्याल रखते हैं और खुश रहते हैं। इसके साथ ही हमें इस फिल्म में ईरानी समाज की एक तस्वीर भी दिखाई पड़ती है। हर जगह की तरह वहां भी मेहनत-मशक्कत करनेवाले लोग गरीबी और परेशानियों में जीते हैं जब कि थोड़े से लोग बड़े-बड़े कोठियों में आराम से रहते हैं।

आजकल बच्चों के लिए टीवी और सिनेमा हॉलों में आने वाली ज़्यादातर फिल्मों में आयरनमैन, स्पाइडरमैन, बैटमैन, सुपरमैन, निंजा टर्टल, गोडज़िला वगैरह की मारधाड़ और तबाही भरी होती है। इन फिल्मों में दिखाये जाने वाले बच्चे भी पता नहीं किस दुनिया के होते हैं। असली लोग, असली बच्चे, असली ज़िन्दगी इनमें कहीं दिखायी ही नहीं देती। ऐसे में हमारे-तुम्हारे जैसे बच्चों के बारे में ये प्यारी-सी फिल्म तुम्हें बहुत पसन्द आयेगी। अगर तुम्हें फ़ारसी या अंग्रेज़ी भाषा नहीं आती तो भी इस फिल्म को देखकर तुम्हें मज़ा आयेगा। और अब तो हमने तुम्हें इसकी कहानी भी बता दी है। जब भी इसे देखने का मौका मिले, हमें ज़रूर बताना कि तुम्हें कैसी लगी 'आसमान के बच्चे'।

– सत्यप्रकाश

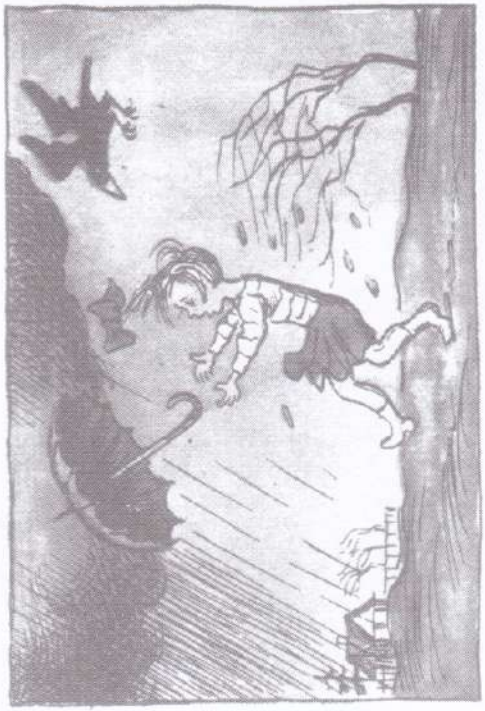

ओ, मेरी छतरी, ठहर जरा!

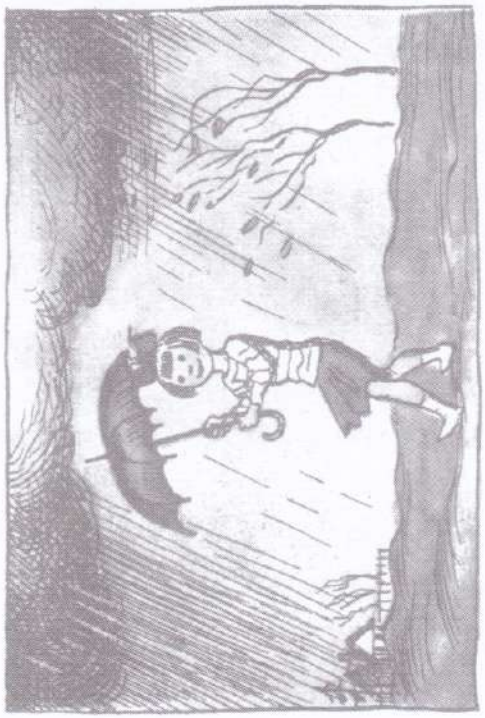

चित्र कैसे बनाएं

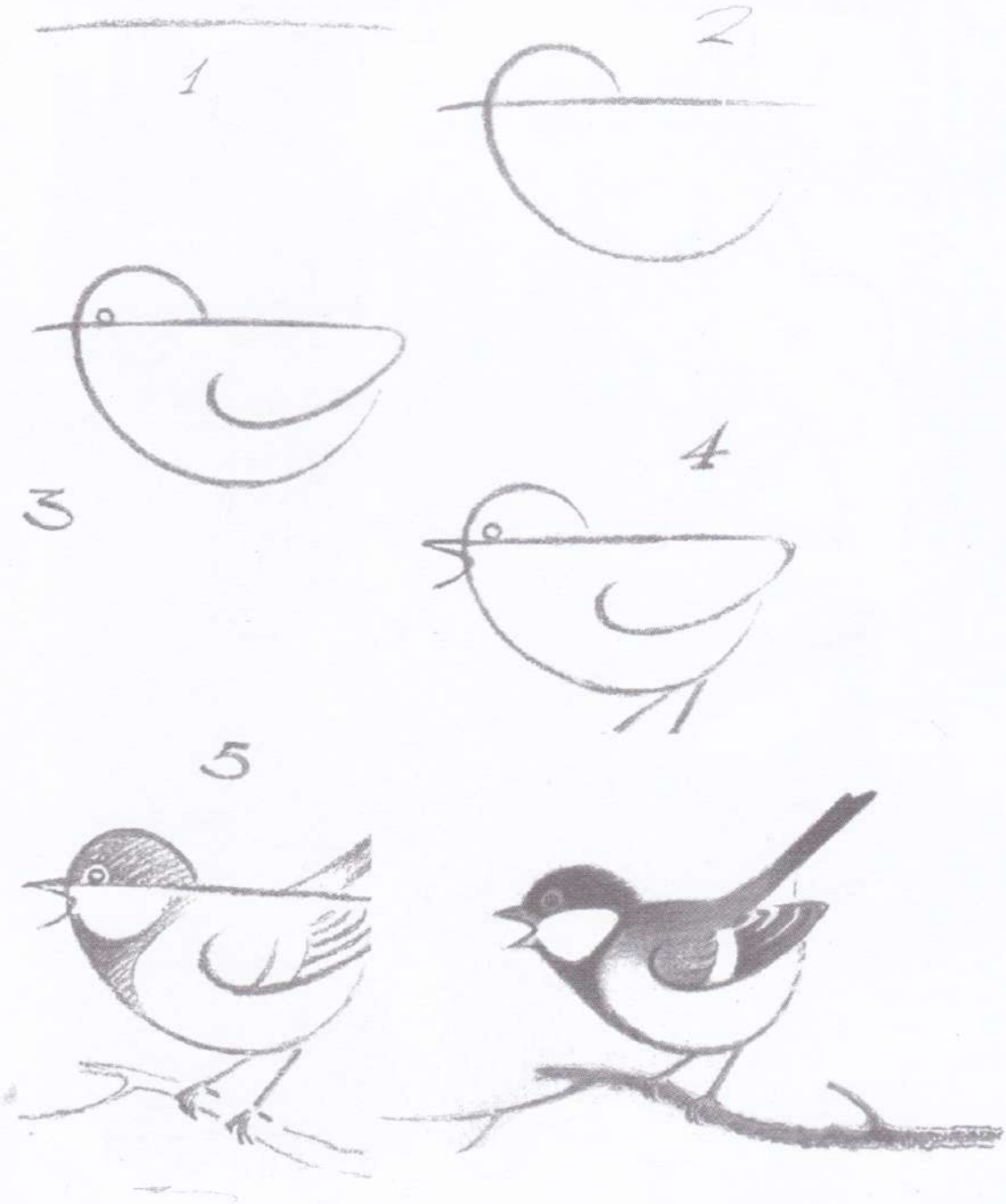

Title Code UPHIN44502/24-10-2013

बिन पुस्तक जीवन ऐसा
बिन खिड़की घर हो जैसा

अनुराग बाल पुस्तकालय

मनोरंजक, ज्ञानवर्द्धक, उत्कृष्ट पुस्तकों का संग्रह, कला, साहित्य, संस्कृति, विज्ञान, खेलों आदि पर रोचक किताबें और पत्र-पत्रिकाएँ, प्रेरक जीवनियाँ, देश-विदेश का चुनिन्दा बढ़िया साहित्य

अनुराग ट्रस्ट

सोमवार से शनिवार, 12 से 8 बजे तक
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

अनुराग ट्रस्ट की दिलचस्प किताबें पढ़ो!

सच से बड़ा सच	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	25.00
गुड़ की डली	कात्यायनी	20.00
धरती और आकाश	अ. वोल्कोव	120.00
नीला प्याला	अरकादी गैदार	40.00
गड़रिये की कहानियाँ	क़यूम तंगरीकुलीयेव	35.00
चींटी और अन्तरिक्ष यात्री	अ. मित्यायेव	35.00
अन्धविश्वासी शेकी टेल	सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
चलता-फिरता हैट	एन.नोसोव, होल्गर पुक्क	20.00
गधा और ऊदबिलाव	मक्सिम गोर्की, सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
गुफा मानवों की कहानियाँ	मैरी मार्स	20.00
हम सूरज को देख सकते हैं	मिकोला गिल, दायर स्लावकोविच	20.00
मुसीबत का साथी	सेर्गेई मिखाल्कोव	20.00
आकाश में मौज-मस्ती	चिनुआ अचेबे	20.00
आश्चर्यलोक में एलिस	सर्वान्तेस	30.00
जिन्दगी से प्यार	जैक लण्डन	30.00
अजीबोगरीब किस्से	होल्गर पुक्क	15.00
झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई (नाटक)	वृन्दावनलाल वर्मा	30.00
गुल्ली-डण्डा	प्रेमचन्द	20.00
रामलीला	प्रेमचन्द	20.00
लॉटरी	प्रेमचन्द	20.00
तोता	रवीन्द्रनाथ टैगोर	15.00
पोस्टमास्टर	रवीन्द्रनाथ टैगोर	15.00
काबुलीवाला	रवीन्द्रनाथ टैगोर	20.00
मनमानी के मजे	सेर्गेई मिखालोव	20.00
आम जिन्दगी के मजेदार कहानियाँ	होल्गर पुक्क	15.00
नये जमाने की परीकथाएँ	होल्गर पुक्क	15.00
नन्हे गुदड़ीलाल के साहसिक कारनामे	सुन यओच्युन	40.00
गोलू के कारनामे	रामबाबू	15.00

अनुराग ट्रस्ट के सभी प्रकाशनों के मुख्य वितरक – जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

जनचेतना, 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, गोरखपुर-273001

अनुराग ट्रस्ट की सभी पुस्तकों की सूची के लिए इस वेबसाइट पर जाएँ : janchetnabooks.org